मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

दुनिया की व्यवस्था काबा शरीफ़ से जुड़ी है

"दुनिया की व्यवस्था काबा शरीफ़ से जुड़ी हुई है और उसके संदेश से। वह सही अक़ीदा, नेक चरित्र व व्यवहार, मानवता के रिश्ते, मुहब्बत व भाईचारा, मानवता का सम्मान, इनसानी जान व माल की सुरक्षा और हर चीज़ में ख़ुदा को हाज़िर व नाज़िर समझने से अस्ल में दुनिया की व्यवस्था स्थापित है। दुनिया की व्यवस्था साइंस पर नहीं टिकी है, टेक्नालॉजी पर नहीं टिकी है, साइंस व टेक्नालॉजी ने बताया कि वह दुनिया की व्यवस्था के लिये ख़तरा है। आज एक मिनट में पूरी दुनिया की व्यवस्था समाप्त हो सकती है। तो पता चला कि दुनिया की व्यवस्था टिकी हुई है अल्लाह के इरादे पर, दुनिया की व्यवस्था स्थापित है उन नियमों व शिक्षाओं पर जिनको पैग़म्बर (संदेष्टा) लेकर आये। उस सबका केन्द्र, वह दावत, वे उद्देश्य, वे शिक्षाएं वह केन्द्र है जिसकी सर्वप्रथम दावत देने वाले हज़रत इब्राहीम अलै० और अन्तिम संदेष्टा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा स०अ० हैं और जिनकी नुमाइन्दगी अल्लाह का घर और रसूलुल्लाह स०अ० की मस्जिद करती है।"

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

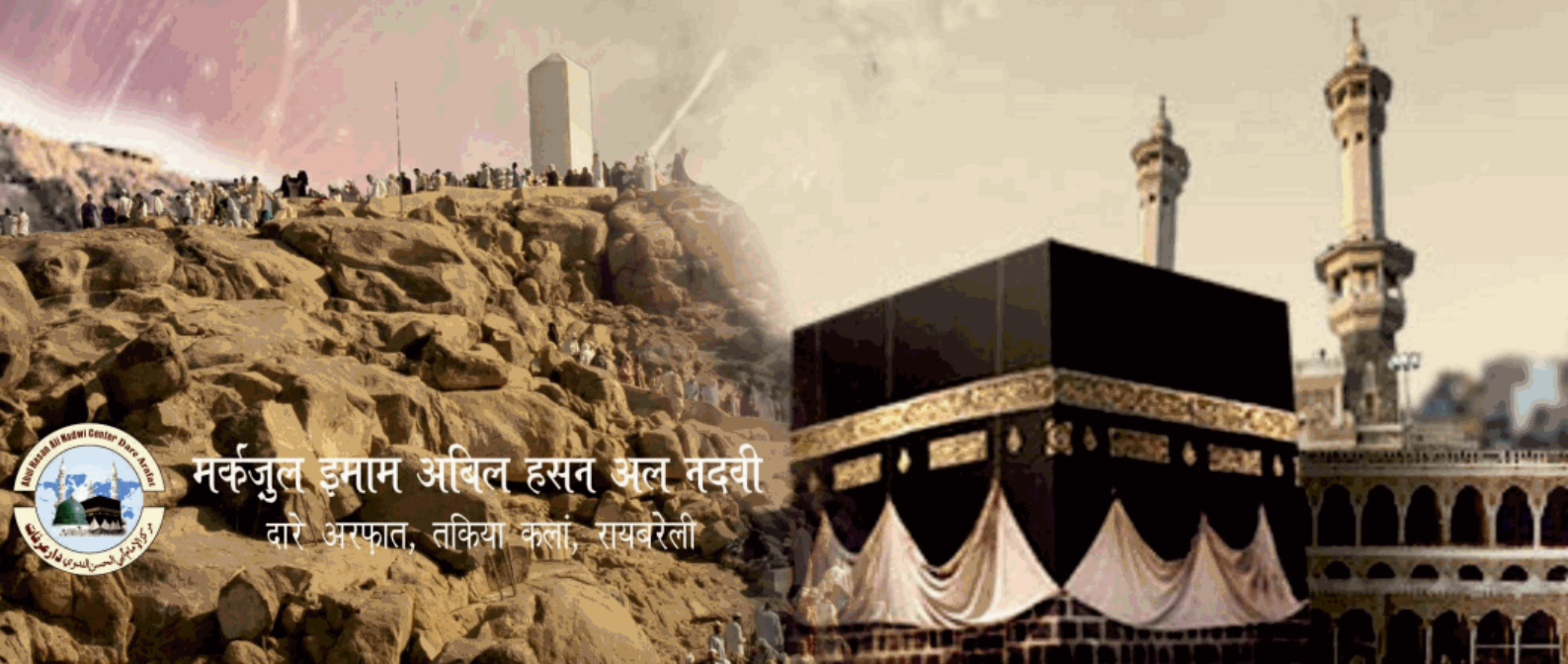

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

अय्यामे तश्रीक़ और तकबीराते तश्रीक़

नवीं ज़िलहिज्जा की फ़ज्र की नमाज़ के बाद से तेरहवीं ज़िलहिज्जा की अस्र की नमाज़ के बाद तक। हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद बुलन्द आवाज़ से मर्दों पर बुलन्द आवाज़ से और औरतों पर आहिस्ता आवाज़ से तकबीर पढ़ना वाजिब है।

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا إِلٰهَ إِلَّااللّٰهُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ وَ لِلّٰهِ الْحَمْدُ

और अगर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद इमाम तकबीर पढ़ना भूल जाये तो मुक़्तदियों को चाहिये कि वो बुलन्द आवाज़ से तकबीर पढ़ें। ये तकबीरें एक बार पढ़ना वाजिब और तीन बार पढ़ना सुन्नत हैं।

ईदुल अज़्हा के दिन की सुन्नतें

सुबह को जल्दी उठना। मिस्वाक करना। ग़ुस्ल करना। अच्छे कपड़े पहनना।

ख़ुशबू लगाना। ईद की नमाज़ ईदगाह में पढ़ना। ईद की नमाज़ से पहले कुछ न खाना। ईदगाह जल्दी जाना। ईदुलअज़्हा की नमाज़ के बाद क़ुर्बानी का गोश्त खाना। पैदल जाना। एक रास्ते से जाना और दूसरे रास्ते से वापिस आना।

रास्ते में तकबीरे तश्रीक़ पढ़ते हुए जाएं:

(اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا إِلٰهَ إِلَّااللّٰهُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ وَ لِلّٰهِ الْحَمْدُ)

क़ुर्बानी का तरीक़ा

क़ुर्बानी का सुन्नत तरीक़ा ये है कि जानवर को कम से कम तकलीफ़ दी जाये। उसे ज़्यादा तड़पाया न जाये। ज़मीन पर लिटाने में ऐसा तरीक़ा न अपनाया जाये कि जिससे जानवर घबरा कर बिदकने लगे।। जब जानवर क़ुर्बानगाह में आ जाये तो उसे जल्द ज़िबह करने की कोशिश की जाये। छुरी और रस्सी वग़ैरह पहले से तैयार रखी जाये, फिर जब क़ुर्बानी का जानवर क़िब्ला रुख़ लिटा दिया जाये तो पहले ये दुआ पढ़ें:

"إِنِّي وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَ الْأَرْضَ حَنِيفاً وَّ مَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ،

إِنَّ صَلَاتِي وَ نُسُكِي وَ مَحْيَايَ وَ مَمَاتِي لِلّٰهِ رَبِّ الْعَالَمِيْنَ، لَا شَرِيْكَ لَهٗ

وَ بِذٰلِكَ أُمِرْتُ وَ أَنَا مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ، اَللّٰهُمَّ مِنْكَ وَ لَكَ"

फिर "بِسْمِ اللّٰهِ، اَللّٰهُ أَكْبَرُ" कह कर ज़िबह करे और ज़िबह करने के बाद ये दुआ पढ़े।

"اَللّٰهُمَّ تَقَبَّلْهُ مِنِّيْ كَمَا تَقَبَّلْتَ مِنْ حَبِيْبِكَ مُحَمَّدٍ ،وَ خَلِيْلِكَ إِبْرَاهِيْمَ عَلَيْهِمَا الصَّلَاةُ وَ السَّلَامُ"۔

अगर किसी दूसरे की तरफ़ से क़ुर्बानी कर रहा हो तो "مِنِّيْ" की जगह "مِنْ" और "مِنْ" के बाद जिसके तरफ़ से क़ुर्बानी कर रहा है उसका नाम ले।

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:९ सितम्बर २०१६ ई० वर्ष:८

संरक्षक: हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (अध्यक्ष – दारे अरफ़ात)

निरीक्षक
मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री- दारे अरफ़ात

सह सम्पादक
मो० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

सम्पादकीय मण्डल
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

मुदक
मो० हसन नदवी

अनुवादक
मोहम्मद सैफ़

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

इस अंक में:

लौट पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू.....२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

व्यवहारिक बुराईयाँ.....३
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

हलाल कमाई का महत्व.....५
मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

नायक का कर्तव्य–कुरआन करीम की रोशनी में...७
अब्दुस्सुब्हान नाखुदा नदवी

जमाअत पाने के मसले.....१०
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

लोकतान्त्रिक व्यवस्था.....१२
अत्ताफ़ आज़मी

क्या पति पत्नी को मार सकता है.....१३
मुहम्मद नजीब क़ासमी

कुर्बानी का महत्व.....१५
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

ईदुल अज़हा की फ़ज़ीलत और कुर्बानी का.....१६

इस्लाम में पोपवाद नहीं.....२०
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

सम्पादक:बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

प्रति अंक 10रू

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

लौट पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू

● बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मानवीय संसार के लिये इतिहास की वे सुनहरी कड़ियाँ यादगार हैं जब मुसलमानों ने दुनिया की कमान संभाली थी और दुनिया को केवल ज्ञान व कला ही नहीं बल्कि व्यवहार व चरित्र और प्रेम व मानवता के ऐसे अनमोल नियम दिये थे कि दुनिया फूलों का बाग़ीचा बन गयी थी। शिक्षण संस्थाओं और बड़ी–बड़ी यूनिवर्सिटियों से लेकर अस्पतालों और औषधालयों तक मानवता व सद्भावना के ऐसे–ऐसे नमूने इतिहास में मिलते हैं कि आज उनके बारे में सोचना ही मुश्किल है। लेकिन केवल इस कारण से कि ईसाई लोग मुसलमानों को अपना दुश्मन समझते थे जबकि उन्होंने मुसलमानों ही से कला व शिल्प व ज्ञान के आधार प्राप्त किये थे, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने सलीब (ईसाईयों का धार्मिक प्रतीक) के नाम पर मुसलमानों से टकराने की पॉलिसी अपनायी और ग्यारहवी सदी ईसवी में फ़्रांस के राजा गाडफ़र्से के नेतृत्व में दस लाख सलीबियों ने क़ुद्स पर हलमा कर दिया और केवल मस्जिद–ए–अक़्सा के आस पास सत्तर हज़ार मुसलमानों को शहीद किया जिनके ख़ून से ईसाई सेना के घोड़े घुटने तक डूबे हुए थे। लेकिन फिर अल्लाह ने ज़ंगी ख़ानदान को खड़ा किया और तीसरी सलीबी जंग में सुल्तान सलाहुद्दीन अय्यूबी रह0 ने मस्जिद–ए–अक़्सा को विजय किया और फिर लगातार सलीबियों को दो वर्षों तक पराजय का सामना करना पडा।

आख़िरी जंग में जो लुइस नौवें के नेतृत्व में लड़ी गयी, सलीबियों को बहुत बड़ी पराजय का सामना करना पड़ा और लुइस बीमार पड़ गया। उसने अपनी बीमारी में एक वसीयतनामा लिखा जो इस समय की ईसाई दुनिया के लिये उन्नति का आधार है। लेकिन उससे उनके व्यवहारिक पतन का भी बख़ूबी अंदाज़ा लगाया जा सकता है। वसीयत नामे के चार मुख्य बिन्दु हैं जो निम्नलिखित हैं:

1– मुस्लिम नायकों के मध्य फूट डालना और फिर जहां तक हो सके उन टुकड़ों को भी छोटी–छोटी टुकड़ियों में इस प्रकार बांट देना कि उनकी ताक़त बिखर जाये।

2– इस्लामिक देशों में प्रशासनिक व्यवस्था को निम्न स्तर का करना और उसके लिये रिश्वत, दंगे–फ़साद और अश्लीलता को इतना आम कर देना कि सत्ता की चूल अपनी जगह से हट जाये।

3– किसी ऐसे गिरोह या सेना को कभी व्यवस्थित न होने देना जो इस्लामी संदेशों पर कड़ा ईमान रखता हो और अपने देश के हक़ को समझता हो।

4– ऐसे यूरोपियन इम्पाएर का बनना जो दक्षिण में ग़ज़्ज़ा से लेकर उत्तर में अन्ताकिया तक चला गया हो और पूर्व में इसकी सीमांए इस हद तक फैली हों कि वह यूरोप तक पहुंच जायें।

अफ़सोस की बात है कि मुसलमान अपनी सादगी में इस मक्कारी को समझ न सके और इस हमले का सामना न कर सके और ग़फ़लत का शिकार होते चले गये। उनको लड़वाया गया, व्यवहारिक दिवालियापन उनमें पैदा करने का प्रयास किया गया। परिणाम यह हुआ कि हालात कुछ के कुछ होते चले गये।

दुनिया पर पश्चिमी वर्चस्व के नतीजे में ज़हन व दिमाग़ यूरोपियन बना दिये गये। इस्लाम से नफ़रत पैदा की गयी और सब कुछ हो जाने के बाद लोकतन्त्र का झन्डा बुलन्द किया गया और आज़ादी का सूर फूंका गया। जो देश लम्बे अर्से तक ग़ुलामी का शिकार रह चुके थे साम्राज्य के बाद उनके ज़हन ग़ुलामी का शिकार रहे। धीरे–धीरे मुसलमानों में जागरुकता पैदा होना शुरू हुई और इधर लगभग अस्सी सालों में बड़े बदलाव हुए। यूरोप व अमरीका ने इसको महसूस किया और..........................

(शेष पेज 9 पर)

व्यवहारिक बुराईयाँ

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

"ऐ वे लोगो जो ईमान लाए हो! कोई भी एक–दूसरे का मज़ाक़ न उड़ाए, इसकी संभावना है कि वे तुमसे अच्छे हों (जिनका मज़ाक़ उड़ाया जा रहा है) और न ही औरतें एक दूसरे का मज़ाक़ उड़ाएं, इसकी संभावना है कि वे तुमसे अच्छी हों (जिनका मज़ाक़ उड़ाया जा रहा है) और तुम बुरे अन्दाज़ से अपना ज़िक्र न करो और आपस में एक दूसरे को बुरे शब्दों से सम्बोधित (मुख़ातिब) न करो, ईमान लाने के बाद यह गन्दा तरीक़ा है और जो तौबा न करे समझ ले कि वह बदराह (पथभ्रष्ट) लोगों में शामिल होगा।" (सूरह हुजूरातः 11)

इस आयत में बहुत अहम बीमारियों की तरफ़ इशारा किया गया है। इनसानी समाज में जिस तरह सभी लोग आपस में मिलजुल कर रहते हैं। आपस में एक दूसरे से संबंध रखते हैं, बहुत से लोगों का पारिवारिक संबंध भी होता है, तो उसमें एक–दूसरे का सम्मान करना आवश्यक है। और आपस में एक दूसरे की चर्चा करना और तन्ज़ () करना। ऐसे नामों से पुकारना जिससे किसी को अपमान का एहसास होता हो यह इस्लामी स्वभाव के ख़िलाफ़ बात है। इसीलिए आयत में स्पष्ट रूप से ईमान वालों को ऐसे कामों को करने से मना किया गया है। क्योंकि कभी–कभी आदमी किसी के बारे में चर्चा करता है या कोई ऐसा वाक्य कह देता है जिससे वह स्वयं को अपमानित समझता हो या किसी व्यक्ति की कोई बात लेकर हंसी उड़ाता है, तो उससे सामने वाले इनसान को अपना अपमान महसूस होता है और मज़ाक़ उड़ाने वाला व्यक्ति यह जताना चाहता है कि वह उससे बड़ा है। यह सारी ग़लत हरकतें इस बात की पहचान होती हैं कि तुम सामने वाले को कमज़ोर समझ रहे हो। यह समझ रहे हो कि फ़लां व्यक्ति हमारा कुछ नहीं कर सकता। हम जो चाहें जिस शब्द से चाहें सम्बोधित करें। हम चाहें तो उसको "ऐ ठिगने आदमी" कह कर पुकारें, चाहें तो "ऐ लम्बू" कह कर पुकारें। यह एक इनसानी आदत है कि हर इनसान दूसरे की कमियां निकालने की चिन्ता में रहता है और अपनी कमियों की तरफ़ नज़र नहीं करता। इसीलिए कहा गया है कि इनसानों की यह सब आदतें ग़लत हैं। इस्लाम सबको एक नज़र से देखता है। किसी को किसी का मज़ाक़ नहीं उड़ाना चाहिये। यह सब आदतें घमन्ड के प्रकार में से हैं। संभव है कि तुम जिसको बुरा समझ रहे हो, जिसको मामूली समझ रहे हो उसका स्थान अल्लाह तआला के यहां बहुत बड़ा व श्रेष्ठ हो। उसके दिल में अल्लाह की मुहब्बत व तक़वा ऐसा हो कि अगर वह अल्लाह की ओर से किसी मसले पर क़सम खा ले तो अल्लाह उसकी क़सम को झूठा साबित न करे, बल्कि वैसा ही करे जैसा कि उसने कहा हो। हदीस शरीफ़ में फ़रमाया गया है कि कभी–कभी ऐसा आदमी जिसका कपड़ा भी ठीक नहीं होता जो बिल्कुल बेढंगा सा लगता है यदि वह किसी सभा में अल्लाह की क़सम खा ले तो अल्लाह उसकी क़सम को ज़रूर पूरा करते हैं। मालूम हुआ कि हम लोग दुनिया में जिस व्यक्ति को कमतर समझते रहे, जिसका मज़ाक़ उड़ाते रहे, कल क़यामत के दिन उसका आमालनामा हमसे ज़्यादा वज़नी होगा।

ऐब निकालना, टीका–टिप्पणी करना, ग़लत शब्दों द्वारा सम्बोधन की मनाही के लिये औरतों को अलग से कहा गया है। क्योंकि औरतों में यह बीमारी ज़्यादा पायी जाती है। जहाँ वे ख़ाली बैठी होती हैं, वहाँ उनके पास केवल चर्चे के कोई काम नहीं होता। इसलिये उनके यहां इन सभी बातों की अधिक संभावनाएं रहती हैं। इसीलिये उनको ख़ास तौर पर इन बातों से रोका गया है और उनसे भी यही कहा गया कि मुमकिन है कि तुम जिसका मज़ाक़ उड़ा रही हो उसका स्थान अल्लाह के यहां तुमसे बड़ा हो। अतः ऐसे सभी शब्दों का प्रयोग करने से बचो

जिनसे किसी का अपमान होता है। इसके बाद आयत के आख़िरी हिस्से में फ़रमाया गया कि दिलों में ईमान के बैठ जाने के बाद यह सब बातें करना बहुत ही गन्दी बात और गन्दा तरीक़ा है। इसका ईमान से कोई संबंध नहीं है। यूं भी यह सभी बातें अपनी जगह पर बुरी हैं। मगर ईमान के साथ यह बातें और बुरी हो जाती हैं। फिर यह चीज़ें फ़िसूक़ में दाख़िल हो जाती हैं। इसलिये जो लोग अल्लाह को मानते हैं, उसके आदेशों का पालन करते हैं, उनको उन चीज़ों से बचना चाहिये और किये हुए कामों पर तौबा करनी चाहिये। क्योंकि समाज में उन बीमारियों के मौजूद रहने पर आपस में अलगाव पैदा हो जाएगा। हर एक का स्वभाव बदला लेने वाला बन जाएगा। जिस साधारण व्यक्ति का तुम मज़ाक़ उड़ाओगे या उसको ग़लत नामों से पुकारोगे, यदि वह आगे चलकर किसी बड़े पद पर नियुक्त हो गया तो उसके अन्दर तुम्हारे ख़िलाफ़ एक बदले की भावना पैदा होगी और तुम्हारी ज़िन्दगी ख़तरे में पड़ जाएगी।

अब्बायी युग की घटना है कि इस ज़माने में एक व्यक्ति की नाक कुछ बड़ी थी तो बहुत से लोग उनका मज़ाक़ उड़ाते थे और जब उनको सलाम करते तो कहते, "अस्सलाम अलैकुमा" अर्थात तुम दोनों को सलाम हो, तुम्हारी नाक को और तुमको। यह मज़ाक़ ऐसा होता था कि सामने वाला व्यक्ति कुछ कह भी न सके, क्योंकि यदि वह कुछ कहेगा कि तुमने किन दो को सलाम किया? तो यह बहाना बना देंगे कि हमने तुम्हारी नाक की बुराई नहीं की, बल्कि अमुक व्यक्ति आ रहा था उसको सलाम किया था। संयोगवश उस व्यक्ति को कोई पद प्राप्त हो गया और एक अवसर पर उसने सब चिढ़ाने वालों की हत्या करा दी। यह तो उन कामों का दुनिया में होने वाला नुक़सान है जो कभी–कभी हो जाता है। लेकिन इन सभी बातों का आख़िरत के एतबार से भी बहुत नुक़सान है। अल्लाह के यहां इन बातों की बहुत पकड़ होगी।

वर्तमान समय में इन शिक्षाओं की रोशनी में हम सबको विचार करना चाहिये कि हम ईमान वाले होने के साथ इस्लामी समाज की इन याचनाओं को कितना ध्यान में रखते हैं। आज हम ईमान वाले होने के बाद भी किसी को विश्वस्नीय नहीं समझते। कभी–कभी सगे भाई को भी भाई नहीं समझते, जबकि ईमानी भाई को भाई समझा जाए। आज हम केवल अपना फ़ायदा देखते हैं। जबकि होना तो यह चाहिये था कि हम अपने भाई की इज़्ज़त में अपनी इज़्ज़त समझते। उसकी तकलीफ़ को अपनी तकलीफ़ समझते। उसकी राहत को अपनी राहत समझते। मगर अफ़सोस की बात है कि आज हर कोई अपनी महिमा के बचाव की चिन्ता में है। यदि ज़रा भी किसी की कोई बात बुरी लग गयी तो तुरन्त एक तूफ़ान खड़ा हो जाता है। आज हर किसी को केवल अपनी चिन्ता है। माफ़ करने व दरगुज़र करने का स्वभाव समाप्त होता जा रहा है। होना तो यह चाहिये था कि हमारे अन्दर क्षमाशीलता होती। अपनी बात को वापस लेने का स्वभाव होता। आपस की रंजिशों से बचने का स्वभाव होता। भाई के साथ भाई जैसा व्यवहार करने का स्वभाव होता। आवश्यकता इस बात की है कि आपस में अच्छे संबंध स्थापित किये जाएं। मतभेद से, ग़लत शब्दों के प्रयोग व मज़ाक़ उड़ाने से बचा जाए और समाज में एकता व सहमति का वातावरण बनाया जाए।

जब तोप सामने हो तो अख़बार निकालो

अकबर इलाहाबादी का यह मिसरा क़लम ही की ताक़त का पता नहीं दे रहा है बल्कि यह संदेश भी दे रहा है कि मीडिया की ताक़त एक बड़ी ताक़त है। तोप एक तरफ़ तो मीडिया की ताक़त एक तरफ़। यही कारण है कि जंग के मैदान में पत्रकार अपनी रिर्पोटिंग के लिये जान हथेली पर रखकर ख़बर देने का काम करते हैं। वर्तमान समय में इसका बड़ा महत्व है।

देख लीजिये! अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया पर ज़ालिम इसाईल छाया हुआ है और मुसलमानों के बारे में यहूदी लॉबी गुमराह करने वाली ख़बरें फैलाती रहती है और उनकी छवि को ख़राब करती रहती है।

चाहिये तो यह था कि हम "गुमराह करने वाली मीडिया" का "सच्ची मीडिया" से सामना करते और दुनिया को दिखाते कि हम कितने पीड़ित और कितने सच्चे हैं मगर अफ़सोस कि हमारे पास इसके लिये समय नहीं।

हलाल कमाई का महत्व

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

अल्लाह तआला ने इनसान को पैदा किया और आरम्भ ही से जीवन में उसको इस बात का ज़िम्मेदार बनाया कि वह मेहनत करके कमाए खाए। क्योंकि जन्नत में बिना मेहनत और बिना कमाए सब कुछ उपलब्ध होगा। जब हज़रत आदम अलै० जन्नत में थे तो ऐसे ही रहते थे लेकिन जब दुनिया में आये तो उनको ज़िम्मेदारी दी गयी कि वे मेहनत व मज़दूरी करके खाए कमाएं। इसी तरह उनकी औलाद को भी क़यामत तक के लिये इस बात का ज़िम्मेदार बना दिया गया कि वे अपनी मेहनत से अपनी आवश्यकताएं पूरी करें। चूंकि इस्लाम सभी मानवीय आवश्यकताओं के बारे में मार्गदर्शन देता है, अतः खाना–कमाना जो एक आधारभूत आवश्यकता है इसके बारे में भी इस्लाम ने विशेष मार्गदर्शन किया है। खाने कमाने का मूलभूत साधन (धन) को कुरआन मजीद में "क़ियामा" कहा गया है। "क़ियामा" का यह शब्द किसी और चीज़ के बारे में नहीं आया है बल्कि केवल काबा और माल अर्थात धन के बारे में अल्लाह तआला ने इसका प्रयोग किया है। मानो उन वस्तुओं पर लोगों का दारोमदार है। क्योंकि दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो खाये बिना रह सके, न कोई वली, न कोई नबी था। यहां तक आत्मिक श्रेष्ठता के बड़े से बड़े स्तर को पहुंच चुका व्यक्ति भी कभी खाये बिना नहीं रह सकता है। साधारणतयः लोग यह समझते हैं कि जो अल्लाह का वली है उसको खाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यह नहीं जानते कि अल्लाह ने दुनिया में कोई ऐसा नहीं बनाया कि वह बिना खाये पूरा जीवन बिता सके। कोई व्यक्ति मेहनत व संघर्ष के द्वारा यह तो कर सकता है कि वह दो–चार दिन न खाये लेकिन यह बात असंम्भव है कि बिल्कुल भी न खाये क्योंकि शरीर भोजन मांगता है। इसलिये कि शरीर का संबंध भोजन से है और रूह (आत्मा) का संबंध काबा से है। यदि काबा नहीं है इनसान आत्मिक रूप से दीवालिया हो जाएगा। पता चला कि दोनों ही चीज़ें आवश्यक हैं। काबा से आत्मिक लाभ होता है, इसलिये कि वह बनवाया ही इसलिये गया है कि केवल एक अल्लाह की इबादत की जाए। रिवायत में आता है कि जब तक एक आदमी भी अल्लाह कहने वाला बाक़ी है, उस समय तक क़यामत (प्रलय) नहीं आयेगी क्योंकि अल्लाह शब्द में ऐसी ताक़त है कि इसके मुक़ाबले में दुनिया बहुत ही कमतर है। रिवायत में आता है कि अल्लाह के नाम में ऐसा आकर्षण है कि जिस पल्ले में रख दिया जाए वह पल्ला झुक ही जायेगा। इसीलिये अल्लाह शब्द में अल्लाह ने ऐसी ताक़त रखी है कि यदि कोई इस्तहज़ार के साथ और अर्थ को समझकर अल्लाह कहे तो उसके अन्दर उतनी ही ताक़त बढ़ती जाती है। जिसको यूं समझा जा सकता है कि एक खाना साधारण होता है जिससे ताक़त कम आयेगी लेकिन यदि कोई ताक़त वाली चीज़ों का प्रयोग करता है तो उसकी शारीरिक शक्ति और बढ़ जाएगी। इसी तरह यदि अल्लाह ने सही अर्थों में संबंध स्थापित हो जाये तो आत्मिक रूप से भी मनुष्य शक्तिशाली हो जाएगा। इसलिये कि जो अल्लाह के नाम से जुड़ता चला जाता है और ला इलाहा इल्लल्लाह से इसका संबंध होता है तो उसके अन्दर भी रूहानी ताक़त बढ़ जाती है जिसका अंदाज़ा नहीं किया जा सकता है।

तात्पर्य यह कि अल्लाह तआला ने धन कमाना आवश्यक घोषित कर दिया है लेकिन इसके लिये कुछ स्पष्ट आदेश एवं शिक्षाएं भी दी हैं कि किस प्रकार कमाया जाये, ताकि मनुष्य हराम (अवैध/अपवित्र) से बच सके। क्योंकि जिस तरह काबा बनाकर अल्लाह तआला ने आत्मिक उन्नति का मार्ग बताया है जिन पर कार्यरत होने से एक व्यक्ति श्रेष्ठ बन सकता है। इसी

तरह यदि धन संबंधित बताये गये नियमों पर यदि कोई मनुष्य अमल करे तो उसका धन भी विशुद्ध होगा और वह हराम से बचा रहेगा और हराम से बचने से के लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि मनुष्य अधिक से अधिक मेहनत की कमाई खाये ताकि रूहानी दुनिया में भी उसका वज़न बना रहे। क्योंकि जो व्यक्ति जितनी सहूलत से धन कामयेगा उसके अन्दर उतना ही हल्कापन हो जाएगा। इसलिये कि बातिन का पेट से गहरा संबंध है। जिस प्रकार सभी हकीमों का यह कहना है कि यदि पेट ठीक हो तो पूरा शरीर ठीक रहता है। ऐसे ही आत्मिक रूप से भी पेट में जो कुछ जा रहा है यदि वह ठीक नहीं है तो रूहानी व्यवस्था भी ठीक नहीं रहती है। पता चला कि सेहत अच्छी रखने के लिये पेट को ठीक रखना आवश्यक है और आत्मिक रूप से ठीक रहने के लिये पेट में जाने वाली चीज़ का ठीक रहना ज़रूरी है। यानि हराम माल से सुरक्षा। लेकिन आजकल दोनों रूपों से मामला उल्टा हो गया है। न किसी का पेट ठीक है, न किसी का बातिन (अन्तः करण) ठीक है। नतीजा यह है कि आज पूरी क़ौम बीमारी में पड़ी हुई है। वरना आज से पहले बीमारी नाम की चीज़ नहीं थी। बहुत कम ऐसा होता था कि कभी कोई बीमारी आ जाती या कोई ख़ास लोग बीमार हो जाते, वरना आम तौर पर ऐसा नहीं होता था।

मालियात (अर्थव्यवस्था) के बारे में यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि सबसे अधिक असरदार कमाई मेहनत व मज़दूरी वाली कमाई है। यह नबियों की भी सुन्नत रही है। हज़रत ज़करिया अलै0 के बारे में आता है कि वे बढ़ई गीरी करते थे। क्योंकि काम करने पर जो मेहनताना मिलता है, उसके पाने में अल्लाह तआला ने ख़ास बरकत रखी है। इसलिये देवबन्द के संस्थापक हज़रत मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहब नानोतवी रह0 ने जो मदरसे के नियम लिखे हैं, उनमें लिखा है कि जो लोग चन्दा करने जाएं उनके लिये आवश्यक है कि जो मेहनत व मज़दूरी वाले लोग हैं उनसे भी एक–एक पैसा लेकर आएं, क्योंकि उनका एक–एक पैसा ही बहुत ज़्यादा बरकत पैदा करेगा। लेकिन आजकल चन्दा करने वालों का मिज़ाज उल्टा हो गया है। सभी लोग पैसे वालों के पास ज़रूर आते हैं लेकिन जो एक पैसे से मदद करने वाला है उसको नज़र उठाकर नहीं देखते हैं।

हलाल कमाई की बरकत भी असाधारण होती है। इबादत में भी इसका असर नुमायां होता है। आजकल इबादत में दिल न लगने का सबसे बड़ा कारण यही है कि आम तौर पर इस बात का अन्दाज़ा नहीं होता कि इनसान का माल कहां का कमाया हुआ है? इबादत में दिल लगने के लिये हलाल कमाई का होना ज़रूरी है। यहां तक कि इनसान को उन दावतों से भी परहेज़ करना ज़रूरी है जिन पर हराम का साया हो, लेकिन आजकल अक्सर दावतें इससे ख़ाली नहीं है।

क़ुरआन मजीद में सूद (ब्याज) को हराम (अवैध) बताया गया है और क्रय–विक्रय को हलाल (वैध) बताया गया है। ब्याज ऐसी चीज़ है कि इससे ज़्यादा नापाक (अपवित्र) कोई चीज़ पैदा नहीं हुई है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने ब्याज लेने वालों से जंग का ऐलान किया है और जिससे ख़ुदा जंग का ऐलान कर दे तो उसका क्या अंजाम होगा। इसीलिए वे लोग जो इस्लाम का लबादा ओढ़कर यह ग़लत हरकत करते हैं उनका अंजाम बहुत बुरा होगा। पता चला कि धन कमाने में बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

लेकिन अफ़सोस ....

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद रह० ने एक बार कलकत्ता में गांधी जी के आगमन के अवसर पर मदरसा इस्लामिया (जो उन्होंने कोलोटोला की मस्जिद में स्थापित किया था) के छात्रों की ओर इशारा करते हुए कहा था:

"गांधी जी! दुनिया में केवल यही वह जमाअत है जो इल्म को इल्म व अल्लाह की रज़ा के लिये हासिल करती है।"

लेकिन अफ़सोस कि आज यह जमाअत भी अपनी विशेषता खोती चली जा रही है और दुनिया की रंगीनियों में गुम होकर अपने अतीत से अपना रिश्ता कमज़ोर कर रही है। इसका नतीजा यह है कि समाज के हर वर्ग को इसका नुक़सान उठाना पड़ रहा है।

मौलाना जाफ़र मसऊद हसनी

(तामीर–ए–हयात – अगस्त/२०१५)

नायक का कर्तव्य
कुरआन करीम की रोशनी में

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

नायक व मार्गदर्शक के लिये धैर्य व धीरज रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखते हैं। इस विशेषता से ख़ाली इनसान दुनिया में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता है। यह विशेषता अल्लाह को इतनी पसंद है कि केवल इसी के आधार पर कमज़ोरो को अल्लाह ने नेतृत्व व नायक के श्रेष्ठ पद पर पहुंचा दिया और अपने वादे उन पर पूरे किये। बनी इस्राईल से के बारे में कहा गया है:

"हमने कमज़ोर समझी जाने वाली क़ौम को इस ज़मीन में पूरब व पश्चिम का वारिस बनाया जिसमें हमने बरकत दे रखी है। इस तरह आपके रब का बेहतरीन फ़ैसला बनी इस्राईल के हक़ में पूरा हुआ। उनके सब्र करने की वजह से।" (सूरह आराफ़: 137)

इसी तरह नायक के पद पर आसीन होने के बाद हिदायत (मार्गदर्शन) का काम भी उन्हीं दृढ़ संकल्प लेने वाले व साहसी व्यक्तियों से लिया जाता है जो सब्र और धैर्य की राह पर डटे रहते हैं:

"हमने बनी इस्राईल में कुछ को इमाम बनाया जो हमारी तौफ़ीक़ से हिदायत का काम अंजाम देते थे यह उस वक़्त हुआ जब उन्होंने सब्र किया।"

(सूरह सज्दा: 24)

सब्र के विभिन्न रूप

सब्र मुश्किलों का होता है और भावनाओं का भी। इसमें सहनशीलता अत्यधिक भावुक होती है और बहुत ज़यादा धैर्य चाहती है। सहाबा किराम (मुहम्मुदर्रसूलुल्लाह स0अ0 के सहायक) को मक्का में जो सब्र करना पड़ा वह मुश्किलो पर सब्र था। जिसका अपना अलग स्थान है और मदीना आने के बाद सब्र की बहुत ही अजीब व ग़रीब स्थिति से उनको गुज़ारा गया और इसके बीतने की देर थी कि जीत का एक सिलसिला शुरू हुआ जैसे बन्द दरवाज़े यकायक खुल जायें। यह सुलह हुदैबिया के अवसर पर किया गया सब्र था। जिसमें सहाबा किराम सफल रहे और अल्लाह की तरफ़ से रूहानी व माद्दी (आत्मिक व भौतिक) इनामों का न ख़त्म होने वाला सिलसिला शुरू हुआ। अल्लाह की तरफ़ से "सकीनत" की शक्ल में दिल के इत्मिनान व सुकून के ख़ज़ाने उन पर उतारे गये और उन ऊंचे अल्फ़ाज़ में अल्लाह तआला के दरबार की तरफ़ से उनको तक़वे की सनद दी गयी:

"अल्लाह ने तक़वे की बात को उनसे जोड़ दिया अस्ल में वही इसके हक़दार थे और इसकी पूरी योग्यता रखते थे।" (सूरह फ़तेह: 26)

अफ़सोस है कि जल्दबाज़ी के स्वभाव ने हमारे दाईयाना किरदार (ऐसा चरित्र जिसे देखकर लोग हमारी ओर आकर्षित हों) पर बहुत बड़ा असर डाला है। मक्की दौर के आरम्भिक युग में कुछ सहाबियों ने आप स0अ0 से काफ़िरों (इनकार करने वालों) के ज़ुल्म व सितम की शिकायत की थी। क्या आप हमारे लिये दुआ नहीं करेंगे? क्या आप हमारे लिये मदद नहीं चाहेंगे? आप स0अ0 तो पूर्णतय: रहमत थे। दुआ ज़रूर की होगी लेकिन उम्मत (समुदाय) के स्वभाव को सब्र व धैर्य की डगर पर डालना था इसलिये सवाल के जवाब में अगले लोगों की मिसालें पेश की कि उन्होंने कैसी कैसी कुर्बानियां दीं। फिर खुशख़बरी भी सुनाई और सबसे आख़िर में यह बात कही: "तुम लोग बस जल्दी मचाते हो।" मालूम हुआ कि जल्दबाज़ी का स्वभाव रसूलुल्लाह स0अ0 का स्वभाव नहीं है। नतीजे का इंतिज़ार किये बग़ैर मिशन को जारी रखा जाये। इस समय अफ़सोस है कि हमारा यह स्वभाव नहीं बन पा रहा है।

बहरहाल सब्र और धीरज की विशेषता इनसान को नेतृत्व का योग्य बनाती है। फिर उससे सही फ़ायदा उठाने की राह भी दिखातीं है। उसी के द्वारा मानवता का प्रकाश प्रकाशित रहता है और हिदायत (मार्गदर्शन) के चिराग़ रोशन रहते है। महानता की गाथाएं उसी के द्वारा लिखी जाती है। इसकी छाप मिट नहीं सकती है। अल्लाह की कुदरत का फ़ैसला यह है कि सब्र करने वालों को बेहिसाब बदला दिया जायेगा। कुरआन करीम में सब्र के सिवा किसी और ख़ासियत पर बेहिसाब अज्र का वादा नहीं है।

निरंतर संघर्ष

यह सब्र ही का एक हिस्सा है। साहसी नायक कभी

हिम्मत नहीं हारते। हिम्मत हारने और कम हिम्मती से इस उम्मत का कोई संबंध नहीं। उदासी इसके क़रीब भी नहीं भटक सकती। एक बार एक सहाबी को नसीहत करते हुए यह बात कही गयी थी जो वास्तव में पूरी उम्मत के नाम आपका संदेश था:

"अल्लाह से मदद मांगो और हिम्मत न हारो।"

आख़िरी नबी (अन्तिम संदेष्टा) हज़रत मुहम्मद स0अ0 के लिये अल्लाह का कथन यह था:

"आपको जैसा आदेश दिया गया है उसी तरह आप डटे रहिये।" (सूरह हूद: 111)

यानि दुनिया इधर से उधर हो जाये लेकिन दृढ़ संकल्प की राह कभी भुलाई न जाये। मक्का वालों ने एड़ी–चोटी का ज़ोर लगाया कि आप स0अ0 अपने काम छोड़ दें। अबू तालिब भी कुछ मुश्रिकीन (शिर्क करने वाले अर्थात बदुदेववादी) के सहयोगी से लगने लगे तो आप स0अ0 ने जो शब्द कहे वे रसूलुल्लाह स0अ0 की दृढ़ता का प्रदर्शन हैं और साहसी व्यक्तियों के लिये गर्व की बात है:

"चचा जान! अगर यह मेरे दाहिने हाथ में सूरज और दाएं हाथ में चांद लाकर रख दें कि मैं इस काम को छोड़ दूं तब भी यह संभव नहीं।"

राहे ख़ुदा की यह निरन्तर संघर्ष था कि जिसके नतीजे में सारे रास्ते आप स0अ0 और आप स0अ0 के जान न्यौछावर करने वाले सहाबा के लिये हमेशा खोल दिये गये:

"जो लोग हमारे रास्ते में जद्दोजहद (संघर्ष) करेंगे, हम अपने रास्ते उनके लिये खोल देंगे। अल्लाह तो एहसान करने वालों के साथ है।" (सूरह अनकबूत: 69)

अन्त: दृष्टि

अन्तर्दृष्टि (बसीरत) दिल व नज़र के उस नूर (प्रकाश) को कहते हैं जिसकी रोशनी में इनसान कभी धोखा नहीं खाता और हर चीज़ को बिल्कुल उसी तरह देखता है जिस तरह वह होती है। बाहरी दिखावे और बाहरी चमक व दमक से कभी प्रभावित नहीं होता और न दुनिया की रंगारंगी का कोई असर स्वीकार करता है। वास्तविकताओं पर गहरी नज़र उसे आने वाले हालात से भी बाख़बर रखती हैं। वक़्त के फित्नों को खूब समझता है और इसकी पूरी तैयारी करता है। वैचारिक व व्यवहारिक दोनों तरह की तैयारी। वास्तविकता यह है कि क़ौम (समुदाय) को आगाह करने और जागरुक रखने का काम जिसके लिये कुरआन करीम "अन्ज़ार" नामक गूढ़ शब्द का इस्तेमाल करता है, अन्तर्दृष्टि के प्रकाश के बिना कठिन है। ये अन्तर्दृष्टि (बसीरत) यानि दीन की पूरी समझ रखने पर ही प्राप्त होती है। इसी का नाम दीनी बसीरत (धार्मिक अन्तर्दृष्टि) है जो नेतृत्व के लिये बहुत आवश्यक है। कभी–कभी समय की मांग कुछ और होती है और गहरी दीनी बसीरत (धार्मिक अन्तर्दृष्टि) कुछ और क़दम उठाने पर उभारती है। इसका एक नमूना हज़रत सिद्दीक़–ए–अकबर रज़ि0 के ख़िलाफ़त के समय में हमें नज़र आता है जब हर ओर से से लोगों के इस्लाम को छोड़ने की ख़बरें आ रही थीं। दूसरी ओर लोगों का एक बड़ा गिरोह ज़कात देने से इनकार कर रहा था। उस समय अधिकतर सहाबा–ए–किराम की राय यह हुई कि उनके साथ जंग न की जाये बल्कि किसी और तरीक़े से इस गंभीर समस्या का हल ढूंढा जाये। इस अवसर पर हज़रत सिद्दीक़–ए–अकबर रज़ि0 की अकेली ज़ात थी जिसने पूरी अन्तर्दृष्टि के साथ यह घोषणा की:

"क्या मेरे ज़िन्दा रहते हुए दीन को नुक़सान पहुंचाया जायेगा? दीन को चोट पहुंचायी जायेगी और मैं ज़िन्दा रहूंगा?"

दिल की गहराइयों से उठने वाली यह आवाज़ सभी असहाब–ए–किराम (रसूलुल्लाह स0अ0 के सहयोगी) की आवाज़ बन गयी। फिर इतिहास ने देखा कि सिद्दीक़–ए–अकबर की इस दीनी बसीरत (धार्मिक अन्तर्दृष्टि) ने कितनी बड़ी क्रान्ति पैदा की। फ़ित्ने दब गये। विद्रोह कुचल दिये गये। ख़िलाफ़त मज़बूत हुई और विजयों का एक दरवाज़ा खुल गया जो हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ि0 के दौर में अपने चरम पर पहुंच गया।

अन्तर्दृष्टि आत्मविश्वास पैदा करती है और हर प्रकार की परिस्थितियों से टक्कर लेने का हौसला देती है। नबी करीम स0अ0 अन्तर्दृष्टि के सबसे श्रेष्ठ स्तर पर आसीन थे। हर तरह के मामले से निपटने के लिये नबी करीम स0अ0 के पास पूरी तैयारी होती। संभव सीमा तक बाहरी तैयारी और आख़िरी हद तक वैचारिक तैयारी

जो पूर्ण आस्था (यक़ीन–ए–कामिल) के आधार पर आप स0अ0 को प्राप्त होती थी। रिवायत करने वाले कहते हैं:

"हर तरह के हालात से निपटने के लिये आप स0अ0 के पास भरपूर तैयारी होती।"

यह विशेषता फिर आप स0अ0 के सहाबा किराम में हस्तान्तरित हुई। यहां तक कि सहाबा किराम रज़ि0 के मुबारक क़दम जहां जहां पड़े, वहां की ऋतु ही बदल गयी। एक अन्तर्दृष्टि रखने वाला नायक जब ज़बरदस्त क्रान्ति पैदा कर सकता है तो एक अन्तर्दृष्टि रखने वाला (साहब–ए–बसीरत) क़ौम की बरपा की हुए क्रान्ति का कौन अंदाज़ा कर सकता है। सम्पूर्ण आस्था (यक़ीन–ए–कामिल) इसके लिये बुनियादी शर्त है। इमामत के पद पर बने रहने के लिये इसकी हैसियत बुनियाद की सी है:

"कह दीजिए! यह मेरा रास्ता है। मैं पूरे अन्तर्दृष्टि के साथ अल्लाह की तरफ़ दावत देता हूं। इसी तरह मेरी पैरवी करने वाले भी। मैं अल्लाह की पवित्रता बयान करता हूं। शिर्क करने वालों से (बहुदेववादी) से मेरा कोई संबंध नहीं है। विशुद्ध एकेश्वरवाद का ध्वजवाहक हूं।" (सूरह यूसुफ़: 108)

यक़ीन

यह नेतृत्व व इमामत की महत्वपूर्ण शर्त है, हो सकता है कि सबसे महत्वपूर्ण शर्त हो। ईक़ान का अर्थ है अल्लाह पर आख़िरी हद तक विश्वास। दीन से अन्तिम दर्जे का संबंध। अपने उद्देश्य से संभव सीमा तक लगाव और अपने धर्म के हक़ एवं वास्तविक होने का अडिग यक़ीन है। नेतृत्व व इमामत के लिये यह अस्ल बुनियाद है। इसी से हौसले जवां और इरादे अपराजेय रहते हैं। जिन कुदसी सिफ़ात लोगों ने इतिहास के पन्नों पर महानता की गाथा लिखी है उनके दिल ईक़ान नामक विशेषता से परिपूर्ण थे। जीवन के किसी भी भाग में मायूसी उनको छूकर भी नहीं गुज़री।

"जब उन्होंने सब्र किया तो हमने उनको मुक़्तदरा बनाया वह हमारी तौफ़ीक़ से हिदायत का काम अंजाम देते थे। वे सबके सब हमारी आयतों पर पूरा–पूरा यक़ीन रखते थे।" (सूरह सजदा: 24)

शेष : लौट पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू

.....फिर इसी वसीयत नामे को ध्यान में रखकर जो कुछ पहले किया गया था उस अंदाज़े को उन्होंने नये साधनों के साथ दोबारा शुरू कर दिया।

इस समय इस्लामी दुनिया के जो हालात हैं उनका गहरी नज़र से जायज़ा लेने वाला इस बात का महसूस कर सकता है कि देखने में नज़र यह आता है कि हर जगह मुसलमान–मुसलमान का गला काट रहा है लेकिन एक साधारण निगाह इस बात को महसूस नहीं करती कि बन्दूक़ कहां से चलायी जा रही है और किसका कांधा इस्तेमाल हो रहा है। देश से देश टकरा रहे हैं। समूहों (जमाअत) में मतभेद पैदा किया जा रहा है। मामूली–मामूली बातों पर जान ले ली जा रही है। लेकिन देखने की ज़रूरत यह है कि रिमोट किसके हाथ में है और मुसलमान जो कभी फैक्टर (Factor) हुआ करते थे आज केवल ऐक्टर (Actor) बन कर रह गये।

इस समय अत्यधिक आवश्यकता इस बात की है कि ज़मीनी सतह पर मेहनत की जाये। विचारों को श्रेष्ठ किया जाये। कार्यक्षमता पैदा की जाये। ईमानी फ़रासत व दृष्टि को जगाया किया जाये। इल्म के ख़ज़ानों को तलाश किया जाये। इसके लिये बेहतर संस्थान स्थापित किये जायें। मतभेद को केवल मतभेद की हद तक रहने दिया जाये। उनको लड़ाई–झगड़ो से बिल्कुल दूर रखा जाये। और उन शासकों की भी बड़ी ज़िम्मेदारी है जिनको अल्लाह तआला ने ताक़त दी है कि वे बड़ी सूझ–बूझ के साथ क़दम आगे बढ़ायें। पूरी पश्चिमी ताक़तें ताक में हैं कि इस्लाम के नाम पर जो क़दम भी बढ़ाया जायेगा उसको बढ़ने से पहले ही रोक दिया जायेगा और उसके लिये हज़ार बहाने खोजे जायेंगे। फिर लोकतन्त्र व आज़ादी का खुल्लमखुल्ला ख़ून किया जायेगा लेकिन इसके बावजूद भी यह दिलफ़रेब नारे बाक़ी रहेंगे। मुसलमानों के हर वर्ग को अपनी ज़िम्मेदारी समझनी है और हर प्रकार के भावना से ऊपर उठकर अल्लाह के नबी स0अ0 के नमूने को सामने रखकर आगे बढ़ना है कि पहले भी यही उन्नति का रहस्य था और आज भी इसी में उन्नति छिपी हुई है।

जमाअत पाने के मसले

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

अकेले किसी फ़र्ज़ नमाज़ को शुरू करने के बाद उसी नमाज़ की जमाअत खड़ी हो जाये तो क्या करे?

किसी आदमी ने कोई फ़र्ज़ नमाज़ अकेले पढ़ना शुरू की उसी बीच उसी नमाज़ की जमाअत होने लगी तो उसकी कई सूरतें हो सकती हैं और हर सूरत का अलग हुक्म होगा।

1– अगर अभी नमाज़ की शुरूआत ही की थी सज्दा नहीं किया था, उससे पहले ही जमाअत खड़ी हो गयी तो नमाज़ चाहे चार रकआत वाली हो, चाहे तीन रकआत वाली, चाहे दो रकआत वाली, जमाअत की फ़ज़ीलत (सवाब) हासिल करने के लिये उसे चाहिये कि खड़े–खड़े ही एक तरफ़ सलाम फ़ेर कर अपनी नमाज़ तोड़ दे और जमाअत में शामिल हो जाये।

2– अगर दो या तीन रकआत वाली नमाज़ थी (फ़ज्र या मग़रिब) तो अगर पहली रकआत का सज्दा कर चुका है तब भी हुक्म यही है कि दूसरी रकआत का सज्दा करने से पहले जमाअत खड़ी हो गयी हो तो अपनी नमाज़ एक तरफ़ सलाम फ़ेर के तोड़ दे और जमाअत में शामिल हो जाये।

3– अगर चार रकआत वाली नमाज़ थी लेकिन उसने पहली रकआत का सज्दा कर लिया था तो अब हुक्म यह है कि एक रकआत और मिला ले और दो रकआत पूरी करके सलाम फेरे फिर जमाअत में शामिल हो जाये। इस तरह यह दो रकआत नमाज़ नफ़िल हो जायेगी। इसका सवाब अलग मिलेगा।

4– अगर फ़ज्र या मग़रिब की नमाज़ में दूसरी रकआत का सज्दा कर चुका है तो अब नमाज़ पूरी कर ले। फ़र्ज़ उसी से पूरा हो जायेगा। इस सूरत में अपनी नमाज़ को तोड़कर जमाअत में शामिल होना मना है। लेकिन नमाज़ पूरी करने के बाद ज़ुहर और इशा की नमाज़ रही हो तो इमाम के साथ नफ़िल की नियत से शामिल हो जाना सवाब का काम है। ऐसा करने से इंशाअल्लाह जमाअत की फ़ज़ीलत मिलेगी और अगर अस्र की नमाज़ ही हो तो अपनी नमाज़ पूरी करने के बाद जमाअत में शामिल नहीं होगा। इसलिये कि अस्र की फ़ज़्र नमाज़ के बाद नफ़िल पढ़ना मकरूह है।

यह हुक्म उस वक़्त है जब तीसरी रकआत सज्दा कर लिया हो लेकिन अगर अभी तीसरी रकआत का सज्दा नहीं किया था तो खड़े–खड़े एक तरफ़ सलाम फेर कर उस नमाज़ से निकल आयेगा और फ़र्ज़ की नियत से जमाअत में शामिल हो जायेगा चाहे ज़ुहर हो या अस्र हो या इशा। (शामी)

नफ़िल या सुन्नत पढ़ने के दौरान जमाअत शुरू हो जानाः

अगर नफ़िल या सुन्नत पढ़ रहा था (चाहे वह ज़ुहर या जुमा से पहले वाली सुन्नत ही क्यों न हो) इसी बीच जमाअत खड़ी हो गयी या जुमा का ख़ुत्बा शुरू हो गया तो अगर अभी दो रकआत पूरी नहीं हुई थीं तो दो रकआत पूरी कर ले फिर सलाम फेर कर जमाअत में शामिल हो जाये और अगर सुन्नत की तीसरी रकआत शुरू कर चुका था और तीसरी रकआत का सज्दा भी कर लिया था तो अब चौथी रकआत पूरी करके ही जमाअत में शामिल हो और तीसरी रकआत का सज्दा नहीं किया था तो उसके बारे में एक क़ौल (कथन) यह है कि क़ादा (बैठक) की तरफ़ फ़ौरन लौट जाये और सलाम फेर के जमाअत में शामिल हो जाये और दूसरा क़ौल यह है कि इस सूरत में भी चार रकआत पूरी होने के बाद ही सलाम फेरे। यह क़ौल ज़्यादा राजेह (प्रचलित) लगता है। (शामी)

जमाअत शुरू होने के बाद फ़ज्र की सुन्नत का मसला

कुछ इमामों के निकट जब जमाअत खड़ी हो जाये तो किसी भी नमाज़ का पढ़ना जायज़ नहीं है। क्योंकि रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमायाः

"जब नमाज़ खड़ी हो जाये तो फ़र्ज़ नमाज़ के सिवा कोई भी नमाज़ जायज़ नहीं है।" (मुस्लिमः 1644)

लेकिन हनफ़ी और मालिकी मसलक इस हदीस के हुक्म से फ़ज्र की सुन्नत को मुस्तसना (अपवाद) मानते हैं। इस पर वे कई दलीलें देते हैंः

1– हदीसों में फ़ज्र की सुन्नत पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। जैसे– हज़रत आयशा रज़ि0 कहती हैं कि रसूलुल्लाह स0अ0 नफ़िल नमाज़ में इतना एहतिमाम (पाबन्दी) किसी भी नमाज़ का नहीं रखते थे जितना सुबह से पहले की दो रकआत का करते थे। (मुस्लिमः 1686)

और हज़रत अबूहरैरह रज़ि0 फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमायाः

"फ़ज्र की दो रकआत कभी मत छोड़ो चाहे घोड़े तुम्हें रौंद डाले।" (अबूदाऊदः 1254)

2– सहाबा किराम से आसार (कर्म) नक़ल किये गये हैं

कि जमाअत खड़ी होने के बाद भी वे मस्जिद के किसी कोने में फ़ज्र की सुन्नत पढ़ लिया करते थे। इसीलिये अबू इस्हाक़ ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि0 का अमल (क्रिया) नक़ल किया है कि फ़ज्र की जमाअत खड़ी हो गयी थी तो उन्होंने एक खम्बे की आड़ लेकर फ़ज्र की सुन्नत पढ़ी फिर जमाअत में शामिल हुए।

इसी तरह के आसार हज़रत इब्ने उमर, हज़रत इब्ने अब्बास, हज़रत अबूदरदा इत्यादि से भी नक़ल किये गये हैं।

इन हदीसों व आसार से जायज़ होने का पता चलता है लेकिन हनफ़ी मसलक ने इसके लिये कुछ तफ़सील (व्याख्या) ज़िक्र (वर्णित) की है उनका ख़्याल रखना ज़रूरी है। हम निम्न में उनकी चर्चा कर रहे हैं।

1– अगर ग़ालिब गुमान (अधिक संभावना) यह है कि फ़ज्र की सुन्नत पढ़ने में व्यस्त हुये तो जमाअत छूट जायेगी तो ऐसी हालत में जमाअत में शामिल हो जाये। सुन्नत उस वक़्त न पढ़े बल्कि जब इश्राक़ का वक़्त हो जाये यानि सूरज निकले हुए पन्द्रह–बीस मिनट हो जाये तो उस वक़्त से लेकर ज़वाल से पहले तक उसको पढ़ सकता है। इसलिये कि हदीस शरीफ़ में कहा गया:

"जिसने फ़ज्र की दो रकआत न पढ़ी हों वह उनको सूरज निकलने के बाद पढ़े।" (तिरमिज़ी: 423)

हनफ़ी मसलक के निकट फ़ज्र की फ़र्ज़ के बाद सूरज निकलने से पहले उन रकआतों का पढ़ना जायज़ नहीं है। इसलिये कि हज़रत इब्ने अब्बास रज़ि0 रिवायत करते हैं कि नबी करीम स0अ0 ने फ़ज्र के बाद नमाज़ पढ़ने से मना फ़रमाया यहां तक कि सूरज निकल आये। (बुख़ारी: 581)

2– अगर इसकी उम्मीद है कि सुन्नत पढ़ने के बावजूद एक रकआत मिल जायेगी और जहां जमाअत हो रही है इससे बिल्कुल अलग–थलग कोई जगह है जहां सुन्नत पढ़ सकता है या वह अपने घर में है और नमाज़ का जो वक़्त तय है उसके एतबार से उसको अंदाज़ा है कि एक रकआत मिल जायेगी तो वह सुन्नत पढ़ ले उसके बाद जमाअत में शामिल हो जाये। एक रिवायत यह भी है कि अगर तश्हद (बैठक) मिल जाने की उम्मीद हो तब भी सुन्नत पढ़ सकता है।

3– अगर मस्जिद का हाल एक ही है जिसमें जमाअत हो रही है या कई हाल हैं लेकिन जमाअत की सफ़ हर जगह मौजूद है तो उसी जगह सुन्नत पढ़ना मकरूह होगा जहां जमाअत हो रही हो। इसीलिये फ़ुक़्हा ने लिखा है कि इस तरह की सूरते हाल में सुन्नत न पढ़े इसलिये कि सुन्नत पढ़ने के मुक़ाबले में मकरूह से बचने की अहमियत ज़्यादा है और सबसे ज़्यादा कराहियत उस वक़्त होती है जब जमाअत की सफ़ में ही खड़े होकर सुन्नत पढ़ना शुरू कर दे। इसके बारे में लोगों में बहुत ग़फ़लत और कोताही पायी जाती है। इमामों को इसकी ओर विशेष ध्यान दिलाने की ज़रूरत है। (शामी)

जमाअत शुरू होने के बाद दूसरी सुन्नतों का हुक्म

ऊपर आ चुका है कि जमाअत खड़ी होने के बाद सिर्फ़ फ़ज्र की सुन्नत की गुंजाइश है। रही दूसरी नमाज़ों से पहले वाली सुन्नतें तो जमाअत खड़ी होने के बाद अगर यह अंदेशा है कि उनकी एक रकआत भी छूट जायेगी तो सुन्नत पढ़ना ठीक नहीं होगा चाहे वह जुमा व जुहर से पहले वाली सुन्नत–ए–मुअक्कदा ही क्यों न हो। बल्कि इस सूरत में हुक्म यह है कि जमाअत में शामिल हो जाये और जुहर के बाद वाली दो रकआत सुन्नत के बाद उन चार रकआत को सुन्नत की नियत से पढ़ ले। जहां तक अस्र और इशा से पहले वाली सुन्नतों का संबंध है वे मुस्तहब हैं उनको क़ज़ा की नियत से बाद में नहीं पढ़ा जायेगा। इसी जुहर और जुमा से पहले वाली चार रकआत को अगर जुहर के वक़्त में नहीं पढ़ा तो बाद में इनकी क़ज़ा भी नहीं है। (शामी)

जमाअत की फ़ज़ीलत कब तक हासिल हो सकती है

हदीस शरीफ़ में फ़रमाया गया है कि जमाअत की नमाज़ अकेले नमाज़ से पच्चीस गुना और कुछ रिवायतों में है कि सत्ताइस गुना ज़्यादा फ़ज़ीलत रखती है। सवाल यह है कि जमाअत को पाने वाला किसको समझा जायेगा?

हनफ़ी मसलक के फ़ुक़्हा के निकट अगर इमाम के साथ आख़िरी क़ादा (बैठक) में भी शामिल हो गया तो उसे इंशाअल्लाह यह फ़ज़ीलत हासिल हो जायेगी। (शामी)

तकबीर–ए–ऊला पाने वाले कौन हैं?

हदीसों में तकबीर–ए–ऊला के बारे में जो फ़ज़ीलत आयी हैं, इमाम अबू हनीफ़ा के निकट वह फ़ज़ीलत तभी हासिल होंगी जब इमाम के साथ–साथ तकबीर–ए–तहरीमा कहे। जबकि साहिबैन के निकट बाद में भी तकबीर–ए–तहरीमा कहने वाले को फ़ज़ीलत मिल जायेगी। फिर एक क़ौल के अनुसार इमाम के सना पढ़ने के दौरान मुक़्तदी तहरीमा कहे तब फ़ज़ाएल हासिल होंगे। इसके अलावा भी कई क़ौल हैं लेकिन सही यह है कि अगर पहली रकआत पा गया तो फ़ज़ीलत हासिल हो जायेगी। (शामी)

लोकतान्त्रिक व्यवस्था

अल्ताफ़ आज़मी

लोकतन्त्र में सत्ता निर्माण के काम में जनता की संलिप्तता और इस मामले में उनकी फ़ैसला करने की हैसियत और सामाजिक बराबरी और राजनीतिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के विचार की विशेषताओं को देखकर बहुत से पढ़े–लिखे मुसलमानों का ख़्याल है कि इस्लाम और लोकतन्त्र में समानता पायी जाती है। वह शासन का ऐसी व्यवस्था है जिसको अपनाने में इस्लामी दृष्टिकोण से कोई हर्ज नहीं है। लेकिन कई विख़्यात धर्मज्ञाताओं और बुद्धिजीवियों ने लोकतन्त्र की आलोचना की है। बहुत सी आंशिक समानताओं के बावजूद लोकतन्त्र और इस्लाम में कोई समानता नहीं देखते बल्कि कहते हैं कि कुछ मामलों में लोकतन्त्र इस्लाम के एकदम विरोधी है।

अल्लमा इकबाल लोकतन्त्र के विरोधी थे उन्होंने अपनी नज़्म व नश्र (गद्य व पद्य) दोनों में इस विचार की काट की है:

है वही साज व कहन मगरिब क जम्हूरी
जिसके पर्दों में नहीं ग़ैर अज़ नवाए क़ैसर
देव इस्तबदाद जम्हूरी क़बा में पाये कोब
तू समझता है ये आज़ादी की है नीलम परी

अल्लामा इक़बाल का ख़्याल है कि लोकतन्त्र अस्ल में पूंजीवादियों के दिमाग़ की पैदावार है ताकि वो व्यक्तिगत आज़ादी के लोकतान्त्रि विचार के पर्दे में किसी रूकावट के बगैर अपने व्यापार को बढ़ावा दें और अधिक से अधिक पूंजी एकत्र करके ख़ूब अय्याशी करें।

अल्लामा इक़बाल का ये भी ख़्याल है कि लोकतन्त्र "मुलूकियत" ही की एक बिगड़ी हुई सूरत है। इसमें कोई शक नहीं कि इसका ज़ाहिर (बाह्य पहलू) सुन्दर और आकर्षित है। लेकिन इसका अन्दरूनी हिस्सा अंधकारमय और बड़ा ही ख़ौफ़नाक है।

जम्हूरियत एक तर्ज़े हुकूमत है कि जिसमें
बन्दों को गिना करते हैं तौला नहीं करते।

पता चला कि लोकतन्त्र में धर्म एक व्यक्तिगत मामला है। रियासत का इससे कोई संबंध नहीं और अल्लामा इक़बाल के निकट राजनीति और धर्म में जुदाई संभव नहीं है। क्योंकि धर्म के अनुसार अल्लाह ही सबसे आला हाकिम (श्रेष्ठ शासक) है और बन्दों को उसके क़ानून की इताअत (अनुसरण) करनी है जबकि लोकतन्त्र में मामला इसके विपरीत है इसमें ख़ुदा के बजाए जनता ही हाकिम और क़ानून बनाने वाली होती है। अल्लामा इक़बाल हर उस क़यासी निज़ाम को जिसमें धर्म को नेतृत्व न प्राप्त हो चंगेज़ी हुकूमत क़रार देते हैं।

जलाले बादशाही हो कि जम्हूरी तमाशा हो
जुदा हो दीं सियासत से तो वो रह जाती है चंगेज़ी

प्राख्यात मुफ़स्सिरे कुरआन (कुरआन की व्याख्या करने वाले) अल्लामा हमीदुद्दीन फ़राही लोकतन्त्र के बारे में लिखते हैं:

"ऐसा शासन जिसमें सबकी हैसियत बराबर हो, अरबों के निकट एक नापसंदीदा हुकूमत का तरीक़ा था। लेकिन आज पश्चिम में बहुत से लोग इस तरीक़े की दावत देने वाले, प्रचार करने वाले हैं और इससे जनता को गुमराह करते हैं। शासन का ये तरीक़ा फ़ित्ना और मानवीय व्यवस्था की पराजय का एक साधन है।"

मौलाना अमीन अहसन इस्लाही लोकतन्त्र के बारे में कहते हैं कि अंधेरे और रोशनी, रात और दिन में और बुराई और भलाई मे जो फ़र्क़ है वही लोकतन्त्र और इस्लाम में है। आप लोकतन्त्र की तारीफ़ करेंगे "जनता का शासन" जनता के लिये, जनता के द्वारा जनता के लाभ के लिये। जबकि इस्लाम में अल्लाह की हाकिमियत (सत्ता) अल्लाह की हुकूमत अल्लाह के क़ानून के ज़रिये से अल्लाह के मानने वालों के लिये। अब इन दोनों में ज़रा जोड़ मिलाइये। है कोई जोड़! लोकतन्त्र की एक नुमाइश की गयी। घटना यह है कि अंग्रेज़ों और अमरीकियों ने एक व्यवस्था चलाकर सारी दुनिया को मबहूत कर दिया, लेकिन हालत क्या है? आप यक़ीन करें कि बड़े–बड़े पूंजीपतियों की बड़ी–बड़ी लाबियां होती हैं और उनके हाथ में पब्लिसिटी के बड़े साधन हैं। बड़े–बड़े माहिरों के मुलाज़िम होते हैं और वो जिस शैतनत को फैलाना चाहें फैला देते हैं। इस्लाम की अपनी अलग व्यवस्था है। जिसकी बुनियाद इल्म व तक़वे (ज्ञान व निग्रह, संयम) पर, इस्तिम्बात पर और शूराइयत पर होगी, तमाम फ़ैसले किताब व सुन्नत की रोशनी में होंगे।

क्या पति पत्नी को मार सकता है?

मुहम्मद नजीब क़ासमी

उपरोक्त मामले में इच्छा की पैरवी के बजाए हमें चाहिये कि हम कुरआन व हदीस की रोशनी में शरीअत के आदेश से जानकारी प्राप्त करें। इस मामले को अल्लाह तआला ने कुरआन करीम में स्पष्ट रूप से इस प्रकार वर्णित किया है:

"मर्द औरतों पर निगरां और सरपरस्त (निरीक्षक व संरक्षक) हैं। क्योंकि अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे पर श्रेष्ठता दी है और क्योंकि मर्दों ने अपने माल ख़र्च किये हैं, अतः नेक औरतें आज्ञाकारी होती हैं। मर्द की अनुपस्थिति में अल्लाह की दी हुई हिफ़ाज़त से (उसके अधिकारों की) हिफ़ाज़त करती हैं और जिन औरतों से तुम्हें सरकशी (बग़ावत) का अंदेशा हो तो (पहले) उन्हें समझाओ और (यदि उससे काम न चले तो) उन्हें ख़्वाबगाहों में अकेला छोड़ दो यानि उनके बिस्तर को अलग कर दो, (और यदि उससे भी सुधार न हो तो) उन्हें मार सकते हो।" (सूरह निसा:34)

बहुत से लोग कुरआन करीम की इस आयत से यह समझ लेते हैं कि बीवी को मारना दीन है। हालांकि कुरआन व हदीस ने पति पत्नी के बीच हिंसा को बढ़ाने के बजाए ऐसे रास्ते अपनाने की शिक्षा दी है जिनसे दोनों के बीच ऐसा प्रेम, लगाव, संबंध और हमदर्दी पैदा हो जो दुनिया के किसी भी दो व्यक्तियों के बीच नहीं होती। इस्लामी शरीअत ने पति–पत्नी को एक–दूसरे के सम्मान के साथ एक दूसरे के अधिकार यानि अपनी अपनी ज़िम्मेदारियों को अदा करने की बार–बार शिक्षा दी है। कुछ आयतें व हदीसें आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

1– अल्लाह तआला कहता है:

"ऐ ईमान वालो! यह बात तुम्हारे लिये हलाल (वैध) नहीं है कि तुम जबरन औरत के मालिक बन बैठो और उनको इस उद्देश्य से क़ैद न करो कि तुमने जो कुछ उनको दिया है, उसका कुछ हिस्सा ले उड़ो, यहां तक कि वे खुली बेहयाई (अश्लीलता) करें और उनके साथ अच्छे बर्ताव के साथ जीवन बिताओ और यदि तुम उन्हें पसंद न करते हो तो यह संभव है कि तुम किसी चीज़ को नापंसद करते हो और अल्लाह ने उसमें बहुत कुछ भलाई रख दी हो।" (सूरह निसा: 19)

इस आयत में अल्लाह तआला ने मर्दों से कहा है कि बीवी अर्थात तुम्हारी पत्नी तुम्हारी तरह एक सम्मानित व्यक्ति है, तुम्हारी गुलाम नहीं है। मानवता की मांग यह है कि उसके साथ अच्छा बर्ताव किया जाए और उसके सम्मान का हर समय ध्यान रखा जाए।

2– अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद में निकाह के उद्देश्यों में दो महत्वपूर्ण उद्देश्य बयान किये हैं और उसकी निशानियों में से है कि तुम्हारी ही जिन्स से तुम्हारी बीवियां पैदा कीं ताकि तुम उनसे आराम पाओ और उसने तुम्हारे बीच मुहब्बत व हमदर्दी पैदा कर दी। यक़ीनन ग़ौर व फ़िक्र करने वालों के लिये इसमें बहुत सी निशानियां हैं। (सूरह रूम: 21)

अल्लामा इब्ने कसीर (रह0) लिखते हैं कि किसी भी दो आत्माओं के बीच इतना प्रेम व लगाव नहीं होता जितना पति पत्नी के मध्य होता है।

3– सूरह बक़रा में अल्लाह तआला कहता है:

"इन औरतों को प्रचलित रूप के अनुसार वैसे ही अधिकार प्राप्त हैं जैसे (मर्दों को) उन पर प्राप्त हैं, हाँ मर्दों को उन पर एक दर्जा श्रेष्ठता है, यानि जिस प्रकार पति के पत्नी पर अधिकार हैं उसी प्रकार पत्नी के भी पति पर अधिकार हैं।" सहाबी–ए–रसूल व मुफ़स्सिर–ए–कुरआन (कुरआन की व्याख्या करने वाले) हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि0) कहते हैं कि मैं अपनी पत्नी के लिये वैसा ही सजता हूं जैसा वह मेरे लिये सजा करती है और मैं चाहता हूं कि जो भी मेरी पत्नी के मेरे ऊपर अधिकार हैं वे सब पूरे कर दूं।

4– रसूलुल्लाह (स0अ0) का कथन है: "जो व्यक्ति अल्लाह और क़यामत के दिन पर विश्वास रखता है वह पड़ोसी को तकलीफ़ न पहुंचाए और मैं तुम्हें औरतों के बारे में भलाई की वसीयत करता हूं क्योंकि वे पसली से पैदा की गयी हैं और पसली में भी सबसे अधिक टेढ़ा उसके ऊपर का हिस्सा है, यदि तुम उसे सीधा करना चाहोगे तो उसे तोड़ डालोगे और अगर छोड़ दोगे तो वह टेढ़ी ही बाक़ी रह जाएगी इसलिये मैं तुम्हें औरतों के बारे में अच्छे मामले की वसीयत करता हूं।" (सही बुख़ारी)

5– रसूलुल्लाह स0अ0 का कथन है: "कोई मोमिन

(मर्द) किसी मोमिना (औरत) से बुग़्ज़ (कपट) न रखे। यदि उसकी एक आदत नापसंद हो तो दूसरी आदत से राज़ी हो जाए।" (सही मुस्लिम)

रसूलुल्लाह (स0अ0) ने पति को पत्नी के साथ अच्छा बर्ताव करने और उसकी कोई आदत नापसंद आने पर उसको अनदेखा करने का आदेश दिया है। संक्षेप में यह कि पत्नी के ऐबों को अनदेखा करते हुए जीवन की यात्रा को खुशगवार बनाए रखने की पति को शिक्षा दी गयी है।

6– रसूलुल्लाह (स0अ0) ने कहा कि औरतों के मामलों में अल्लाह से डरो, तुमने उन्हें अल्लाह की अमान (पनाह) के द्वारा प्राप्त किया है और उनकी शर्मगाहों को अल्लाह तआला के कलिमे के द्वारा हलाल किया है। उन पर तुम्हारा अधिकार है कि वह तुम्हारे घर में उन लोगो को न आने दे जिनको तुम पसंद नहीं करते हो। यदि वे ऐसा करें तो उनको मारो किन्तु ऐसी मार मारो जो बहुत अधिक न हो (और चेहरे पर बिल्कुल न मारो) और तुम पर उनका यह हक़ है कि तुम उनको नान–नफ़्क़े (भोजन व आवश्यक वस्तुएं) और कपड़े की नियमानुसार ज़िम्मेदारी पूरी करो। (सही मुस्लिम)

7– अन्तिम हज के अवसर पर रसूलुल्लाह स0अ0 ने अल्लाह की बड़ाई बयान करने के बाद नसीहत की: "ख़बरदार! मैं तुम्हें औरतों के हक़ में भलाई की नसीहत करता हूं, इसलिये कि वे तुम्हारी निगरानी व सरपरस्ती में हैं लेकिन तुम्हारे पास क़ैदी की तरह नहीं हैं और तुम उन पर इसके अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं रखते कि उनसे सम्भोग करो यहां तक कि वे खुल्लमखुल्ला अश्लीलता पर उतर आएं तो उन्हें अपने बिस्तर से अलग कर दो, और उनकी मामूली पिटाई करो, फिर यदि वे तुम्हारी बात मानने लगें तो उन्हें तकलीफ़ पहुंचाने के रास्ते तलाश न करो। जान लो कि तुम्हारा तुम्हारी बीवियों पर और उनका तुम पर हक़ है। तुम्हारा उन पर हक़ यह है कि वे तुम्हारे बिस्तर पर उन लोगो को न बिठाएं जिन्हें तुम पसंद नहीं करते हो बल्कि ऐसे लोगो को घर में प्रवेश भी न करने दें और उनका तुम पर यह हक़ है कि उन्हें बेहतरीन खाना और बेहतरीन कपड़ा दो।" (तिरमिज़ी)

8– रसूलुल्लाह स0अ0 का कथन है कि तुममें से कोई व्यक्ति अपनी बीवी को गुलाम की तरह न मारे फिर शायद दिन की समाप्ति पर उनसे संभोग करने लगे।

(सही बुख़ारी)

रसूलुल्लाह (स0अ0) के इस कथन से स्पष्ट रूप से यह पता चला कि साधारणतयः बीवियों को मारने की आज्ञा नहीं है बल्कि छोटी–छोटी बातों पर बीवियों को पीटना या उसे अपमानित करना इस्लाम में मना है।

9– हज़रत आयशा (रज़ि0) कहती हैं कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने कभी किसी को अपने हाथ से नहीं मारा, न किसी औरत को और न किसी सेवक को यद्यपि जिहाद (इस्लामिक संघर्ष) में क़िताल (क़त्ल) किया और जब किसी ने आप (स0अ0) को हानि पहुंचाई, आपने उसका बदला नहीं लिया लेकिन यदि किसी अल्लाह के आदेशों की पूर्ति में व्यवधान डाला तो उससे बदला लिया। (सही मुस्लिम)

हज़रत इमाम नववी रह0 ने इस हदीस की व्याख्या में लिखा है कि पत्नी या सेवक को (अश्लीलता करने पर) मारने की गुंजाइश है लेकिन न मारना ही बेहतर है। मुल्ला अली क़ारी (रह0) लिखते हैं कि बीवी व सेवक की बड़ी ग़लती के बावजूद उनको न मारना ही बेहतर है यद्यपि औलाद के अवज्ञा करने पर उसके सही प्रशिक्षण के लिये कभी–कभी उनकी पिटाई करना ही सही होता है।

10– रसूलुल्लाह (स0अ0) का कथन है कि तुममें अच्छा वह है जिसका बर्ताव अपने परिवार के साथ अच्छा हो और मैं तुममें अपने परिवार के बारे में सबसे अच्छा हूं। (सुनन तिरमिज़ी)

रसूलुल्लाह स0अ0 का नमूना हदीस में गुज़रा कि आपने कभी किसी औरत को नहीं मारा।

11– हज़रत जाबिर रज़ि0 कहते हैं कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने चेहरे पर मारने से मना किया है। (सही मुस्लिम)

हज़रत इमाम नववी (रह0) मुस्लिम शरीफ़ की व्याख्या में लिखते हैं:

"किसी भी जीव के चेहरे पर मारना जायज़ (वैध) नहीं है।" औरत तो प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है अतः किसी भी मर्द के लिये किसी भी स्थिति में औरत के चेहरे पर मारना जायज़ नहीं है बल्कि बहुत बड़ा गुनाह है। यदि किसी व्यक्ति ने किसी भी कारण से अपनी बीवी के चेहरे पर मारा तो हुक़ूक़–उल–इबाद (बन्दों के अधिकार) के कारण से उसे अपनी बीवी के साथ मामला बराबर करने के बाद अल्लाह तआला से माफ़ी भी मांगनी होगी।

क़ुर्बानी का महत्व

मुहम्मद अरमुग़ान नदवी

हदीसः हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने इरशाद फ़रमायाः जिसके पास (माल की) अधिकता हो और वह क़ुर्बानी न करे तो ऐसा व्यक्ति हरगिज़ हमारी ईदगाह के क़रीब न आये।

फ़ायदाः क़ुर्बानी अल्लाह की रज़ा को पाने का एक बेहतरीन ज़रिया और दीन–ए–इस्लाम की मांग के सामने सभी मांगों और इच्छाओं का दबाने का नाम है। इसका ऐतिहासिक क्रम हज़रत इब्राहीम अलै0 व हज़रत इस्माईल अलै0 की क़ुर्बानी से मिलता है। दीन–ए–इस्लाम में सुन्नत–ए–इब्राहीमी की इस अहम यादगार को हर साल ताज़ा करने का ताकीदी आदेश आया। जो व्यक्ति साहब–ए–हैसियत (क्षमताशील) होने के बावजूद उस सुन्नत–ए–इब्राहीमी को ताज़ा न करे तो ऐसे व्यक्ति के बारे में उपरोक्म हदीस में रसूलुल्लाह स0अ0 की ज़बान से कठोर शब्द निकले हैं। जिनसे पता चलता है कि ऐसे व्यक्तियों को उस दिन खुशी मनाने का इस्लामी अनुसार से कोई अधिकार नहीं है। हदीसों से मालूम होता है कि आप स0अ0 ने हमेशा क़ुर्बानी की। सहाबा किराम रज़ि0 ने भी इस काम की पाबन्दी की और इसको इस्लामी कार्य में गिनवाया।

दीन–ए–इस्लाम की मांग यह है कि इनसान अपनी हर चीज़ को अल्लाह पर क़ुर्बान करने वाला, उसके आदेशों के आगे बिना किसी असमंजस के झुक जाने वाला बन जाये। उसके दिल से उन सभी चीज़ों की महानता व बड़ाई निकल जाए जिस महानता व बड़ाई की अधिकारी केवल अल्लाह की ज़ात है। इसी तरह उसके दिल से उन सभी चीज़ों की वह मुहब्बत भी मिट जाये जिनकी मौजूदगी आम तौर से अल्लाह के ज़िक्र से ग़फ़लत का कारण बन जाती है। जैसे माल व औलाद की मुहब्बत। इसीलिये अल्लाह तआला ने उन सब चीज़ों को अपनी मर्ज़ी पर नुमाइन्दे के तौर पर साल में एक बार हर साहब–ए–इस्तेतात (जो क़ुर्बानी कराने की क्षमता रखता हो) "क़ुर्बानी" वाजिब की।

क़ुर्बानी इसी बात का अभ्यास होती है कि एक ईमानवाले के लिये अल्लाह तआला के आदेशों से बढ़कर न किसी धर्म में पवित्र समझा जाने वाला जानवर है, न ही उसका अपने हाथों से कमाया हुआ माल है और न ही किसी चीज़ की मुहब्बत अल्लाह के आदेश के आगे कोई अर्थ रखती है। यही कारण है कि शरई आदेशों के आधार पर इनसान अपने पैसों से एक क़ीमती जानवर ख़रीदता है। उसको खिलाता–पिलाता है और मानवीय स्वभाव के अनुसार उसका इस जानवर से लगाव भी हो जाता है मगर इसके बावजूद भी समय आने पर अल्लाह तआला के आदेश की पूर्ति के लिये केवल अपना जानवर ही नहीं ज़िबह करता बल्कि दूसरे शब्दों में अपनी इच्छाओं, प्रेम की भावना को भी क़ुर्बान कर देता है। क़ुर्बानी के इस काम से दीन–ए–इस्लाम का भी यही मक़सद है कि मनुष्य का स्वभाव हर चीज़ को अल्लाह की रज़ा को पाने हेतु त्याग देने वाला बन जाये। अल्लाह तआला का कथन हैः

"अल्लाह को उनका गोश्त और ख़ून हरगिज़ नहीं पहुंचता, हा उसको तुम्हारे दिल का तक़वा पहुंचता है।" (सूरह हजः 37)

पता चला कि क़ुर्बानी का मक़सद अल्लाह की रज़ा को पाने का और त्याग की भावना का दिलों में पाया जाना है।

क़ुर्बानी के इसी अहम उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस्लामी शरीअत में हर साहब–ए–निसाब पर क़ुर्बानी वाजिब है। मगर अफ़सोस की बात है कि कुछ लोगों के अलावा आज बहुत से दीन दार लोगों की नज़रों से क़ुर्बानी का यह महान उद्देश्य ओझल होता जा रहा है। उनमें से कुछ लोग तो वे हैं जो क़ुर्बानी करते हैं किन्तु उनका मक़सद क़ुर्बानी नहीं बल्कि समाज में अपनी शोहरत होता है और बहुत से वे हैं जो ईमान वालों के वर्ग में शामिल होने और किसी भी दर्जे में दीनी लगाव के बावजूद अपने आप को उस हैसियत का नहीं समझते कि वे क़ुर्बानी में हिस्सा लें। जबकि क़ुर्बानी में ख़र्च होने वाली मामूली रक़म से कहीं ज़्यादा ईद के दिन खुशी के इज़हार की फ़िज़ूल की तैयारियों में वे एक बड़ी रक़म ख़र्च कर देते हैं। हक़ीक़त यह है कि इस्लामी दृष्टिकोण से ऐसे लोगों को ईद के दिन खुशी ज़ाहिर करने का कोई हक़ नहीं। यह वे लोग हैं जो अल्लाह तआला के दिये हुए माल को उसी की राह में क़ुर्बान करने से बचते हैं और अल्लाह के रसूल स0अ0 की ज़बान से निकले हुए कठोर शब्दों के बावजूद उनके सरों पर जूं नहीं रेंगती।

ईदुल अज़हा की फ़ज़ीलत और क़ुर्बानी का हुक्म और मसले

दुनिया की हर क़ौम (समुदाय) और हर मज़हब (धर्म) का साल में कोई न कोई त्यौहार ज़रूर होता है। इनसानी स्वभाव इसका मांग भी करता है कि साल में ख़ुशियों को ज़ाहिर करने का भी कोई दिन होना चाहिये। इसीलिये दीन–ए–फ़ितरत यानि इस्लाम में भी इनसान के स्वभाव का मान रखा गया है और साल में दो दिन ख़ुशियां मनाने के भी तय किये गये हैं। अबूदाऊद में हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) मदीना तश्रीफ़ लाये (पधारे) तो मदीना वालों को देखा कि उन्होंने साल में ख़ुशियां मनाने के दो दिन तय कर रखे हैं, रसूलुल्लाह (स0अ0) ने पूछाः

"ये कैसे दो दिन हैं?", सहाबा किराम (रज़ि0) ने उत्तर दियाः

"जाहिलियत के ज़माने में हम उन दोनो में खेल–कूद किया करते थे।"

रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः "अल्लाह ने उन दिनों के बदले में उनसे बेहतर दो दिन तुमको दिये हैं, "ईदुल अज़हा" और "ईदुल फ़ित्र"।

इनमें से ईदुलफ़ित्र रमज़ानुल मुबारक के बाद मनायी जाती है। जब अल्लाह के हुक्म से अल्लाह के बन्दे पूरे एक महीने तक समय विशेष में खाने–पीने और नफ़्सानी ख़्वाहिश (शारीरिक इच्छाओं) से परहेज़ करते हैं। दूसरी ईद यानि ईदुल अज़हा ज़िलहिज्जा (इस्लामी कैलेन्डर का अन्तिम माह) की दस तारीख़ को मनायी जाती है। यही हज का समय भी होता है। हज और क़ुर्बानी के लगभग मनासिक (कार्य) हज़रत इब्राहीम (अलै0), हज़रत हाजरा और हज़रत इस्माईल (अलै0) की अलग–अलग क़ुर्बानियों और कामों की याद में मनाये जाते हैं। लेकिन दोनों ईदों में समान चीज़ ये है कि इसमे दूसरी क़ौमों के त्योहारों की तरह कोई शोर व गुल बिल्कुल नहीं है। दोनों में जो काम बताये गये हैं, उनमें इस्लाम की सादगी की झलक मिलती है। इन ख़ुशी के मौक़ो पर भी बन्दे अल्लाह की बड़ाई का नारा लगाते हुए बस्ती के बाहर ईदगाह या किसी मस्जिद में जाते हैं और अल्लाह के सामने दो रकआत नमाज़ अदा करके अपनी बन्दगी प्रकट करते हैं। मानों ईद की नमाज़ मुसलमानों की ख़ुशी मनाने का नमूना हैं। मुसलमानों से मांग यही है कि ख़ुश के मौक़े पर भी अल्लाह के सामने सर झुका दें और उसके हुक्मों के सामने भी सर झुका दें। ईदुल अज़हा के मौक़े पर ईद की नमाज़ के अलावा ज़िल्हिज्जा के शुरू के दस दिन की अहमियत व फ़ज़ीलत (महत्व व श्रेष्ठता) भी अलग से बयान की गयी हैं। इसीलिये बुख़ारी में हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमायाः

"इन दस दिनों से बेहतर दूसरे कोई भी ऐसे दस दिन नहीं है जिनमें अल्लाह को नेक अमल ज़्यादा महबूब (प्रिय) हों, सहाबा ने पूछाः अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं? आप (स0अ0) ने फ़रमाया, अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं सिवाये उस शख़्स के जो अपनी जान व माल के साथ निकला हो और उसमें से कोई चीज़ भी वापस न लाया हो।"

और तिरमिज़ी और इब्ने माजा की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः "अल्लाह तआला की इबादत ज़िलहिज्जा के दस दिनों से बेहतर और कोई ज़माना नहीं है। उनमें एक दिन का रोज़ा एक साल के रोज़ों के बराबर और एक रात में इबादत करना शब क़दर में इबादत करने के बराबर है।"

कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने सूरह फ़ज्र में जिन दस रातों की क़सम खाई है मुफ़स्सिरीन (कुरआन की व्याख्या करने वाले) का कथन है कि इन दस रातों से ज़िल्हिज्जा के पहले अशरे (प्रथम दस दिन) की रातें ही मुराद हैं। इनमें ख़ास तौर पर ज़िल्हिज्जा की 9/तारीख़ की बड़ी फ़ज़ीलत बतायी गयी है। मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू क़तादा (रज़ि0) की लम्बी हदीस में है किः

"अरफ़ा (9/ज़िलहिज्जा) का रोज़ा रखने पर मेरा अल्लाह पर गुमान यह है कि उसे पिछले एक साल और आगे के एक साल के गुनाहों का कफ़्फ़ारा बना देगा।" लेकिन अरफ़ा के रोज़ों की ये फ़ज़ीलत ग़ैर हाजियों के लिये है। हाजियों को इस रोज़े से मना कर दिया गया है ताकि अरफ़ात के मैदान के काम अच्छी तरह अन्जाम दे सकें। इसीलिये अबूदाऊद में अबूहुरैरा (रज़ि0) की रिवायत आयी है कि आंहज़रत (स0अ0) मक़ामे अरफ़ात में अरफ़ा का रोज़ा रखने से मना कर दिया है।

क़ुर्बानी

ज़िल्हिज्जा के महीने में सबसे अहम इबादत क़ुर्बानी है। इसीलिये हज़रत आयशा (रज़ि0) फ़रमाती हैंः नबी करीम

(स0अ0) ने इरशाद फ़रमायाः

"आदम की औलाद नहर के दिन (10/ज़िलहिज्जा) जो अमल करती है उनमें अल्लाह को सबसे ज़्यादा महबूब ख़ून बहाना (कुर्बानी करना) है। वो जानवर क़यामत के दिन अपनी सींगों, बाल और खुरों के साथ आयेगा और ख़ून ज़मीन पर गिरने से पहले ही अल्लाह के यहां मक़बूलियत (स्वीकृति) हासिल कर लेता है। लिहाज़ा उसको ख़ुशदिली (प्रसन्नचित्त) से किया करो।" (तिरमिज़ी, इब्ने माजा)

साहिबे निसाब पर कुर्बानी करना अहनाफ़ (हनफ़ी फ़िक़) के निकट वाजिब है। इसलिये कि हदीस में नबी करीम (स0अ0) का इरशाद नक़ल किया गया है किः

"जिसके पास वुसअत (क्षमता) हो और कुर्बानी न करे वो हमारी ईदगाह के पास न आये।"

कुर्बानी का निसाब

कुर्बानी हर अक़्ल वाले बालिग़, मुक़ीम (स्थानीय) मुसलमान पर वाजिब होती है। शर्त ये है कि वो साढ़े बावन तोला (612 ग्राम) चांदी या उसकी क़ीमत का मालिक हो और ये कि उसकी ज़रूरी ज़रूरतों से ज़्यादा हो या व्यापारिक माल की शक्ल में हो या आवश्यकता से अधिक घरेलू सामान या रहने के मकान से ज़्यादा मकान हों। कुर्बानी और ज़कात के निसाब में एक फ़र्क़ ये भी है कि ज़कात में साल गुज़रने की शर्त होती है लेकिन कुर्बानी में साल गुज़रने की शर्त नहीं है। इस ज़माने में निसाब (निश्चित मात्रा) का मालिक है तो कुर्बानी वाजिब (अनिवार्य) होगी।

कुर्बानी के दिन

कुर्बानी के तीन दिन हैं। 10, 11 और 12 ज़िलहिज्जा। इनमें से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) पहले दिल कुर्बानी करना है। यद्यपि जहां ईद की नमाज़ जायज़ होती है वहां ईद की नमाज़ से पहले कुर्बानी करना जायज़ नहीं है। इसलिये बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत जन्दब की रिवायत है फ़रमाते हैंः

"नबी करीम (स0अ0) ने नहर के दिन (10/ज़िलहिज्जा) नमाज़ पढ़ाई। फिर ख़ुत्बा दिया फिर कुर्बानी की और इरशाद फ़रमायाः जिसने नमाज़ पढ़ने से पहले कुर्बानी की थी वो इसकी जगह दूसरी कुर्बानी करे और जिसने कुर्बानी नहीं की थी वो अल्लाह का नाम लेकर कुर्बानी करे।"

कुर्बानी के जानवर

कुर्बानी सिर्फ़ ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, दुम्बा, भेड़ (नर–मादा दोनों) की जायज़ (वैद्य) है। बक़िया जानवरों की जायज़ नहीं है। इसमें भी हदीस शरीफ़ में ये शर्त लगायी गयी कि मुसन्ना (निश्चित उम्र को पहुंच चुका हुआ) हो और किसी भी प्रकार के ऐब या कमी से ख़ाली हो। इसीलिये मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत जाबिर (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमायाः "सिर्फ़ मुसन्ना की कुर्बानी किया करो यहाँ तक कि तुम पर तंगी हो तो भेड़, दुम्बा का छः माह का या उससे ज़्यादा का जानवर ज़िबह कर लिया करो।"

इन जानवरों में से हर एक का मुसन्ना अलग–अलग होता है। इसीलिये ऊंट का मुसन्ना वो है जो पांच साल पूरे कर चुका हो। गाय और भैंस का मुसन्ना वो है जो दो साल पूरे कर चुका हो और बकरी और भेड़ और दुम्बा का मुसन्ना वो है जो एक साल पूरे कर चुका हो। लेकिन जैसा कि हदीस में गुज़रा है दुम्बा अगर छः माह या उससे ज़्यादा का हो तो उसकी कुर्बानी की जा सकती है।

भेड़, बकरी की कुर्बानी सिर्फ़ एक व्यक्ति की तरफ़ से हो सकती है जबकि ऊंट व गाय–भैंस इत्यादि में सात लोग शामिल हो सकते हैं लेकिन शर्त ये है कि किसी का हिस्सा सातवें हिस्से से कम न हो और सबकी नियत कुरबत (निकटता) की हो।

ऐबों का वर्णन

रसूलुल्लाह (स0अ0) ऐब (कमी) से पाक और बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी फ़रमाया करते थे और उम्मत को भी ऐबों से पाक बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी के लिये कहा करते थे। हज़रत अली (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने हमको हुक्म दिया कि जानवर की आंख, कान का जायज़ा लें और कान कटे–फटे और कान मे सूराख़ वाले जानवरों की कुर्बानी न किया करें। (अबूदाऊद, नसाई, इब्ने माजा)

अबूदाऊद, नसई और इब्ने माजा ही में हज़रत बराअ बिन आज़िब (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) से सवाल किया गयाः "किन जानवरों की कुर्बानी से बचा जाये? आप (स0अ0) ने हाथ के इशारे से फ़रमायाः चार से! वो लंगड़ा जानवर जिसका लंगड़ापन ज़ाहिर हो। वो काना जिसका कानापन ज़ाहिर हो। ऐसा बीमार जानवर जिसकी बीमारी ज़ाहिर हो और वो लाग़र ज़िसकी हड्डियों में गूदा ही न हो।

इन जैसी हदीसों से फ़ुक़्हा (धर्मगुरूओं) ने ऐबों (कमियों) के बारे में निम्नलिखित वर्णन किया हैः

1– अंधे, काने और लंगड़े जानवर की कुर्बानी जायज़ नहीं है। उसी तरह उस बीमार और लाग़र (अत्यधिक कमज़ोर) जानवर की कुर्बानी भी ठीक नहीं जो अपने पैरों द्वारा कुर्बानी की जगह तक न जा पाये।

2– जिस जानवर की दुम तिहाई से ज़्यादा कटी हो उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है।

3– जिस जानवर के दांत बिल्कुल न हों या अक्सर न हों उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है। यही हुक्म उस जानवर का भी है जिसके कान पैदाइशी तौर पर न हों।

4– जिस जानवर की सींग पैदाइशी तौर पर न हों या बीच से टूट गये हों उसकी कुर्बानी जायज़ है लेकिन अगर सींग जड़ से उख़ड गयी हो तो असर दिमाग़ तक पहुंच जाता हैं।

5– ख़स्सी (बधिया) की कुर्बानी न केवल जायज़ बल्कि अफ़ज़ल और सुन्नत है। रसूलुल्लाह (स0अ0) से ख़स्सी की कुर्बानी करना साबित है।

कुर्बानी का तरीक़ा

अपनी कुर्बानी अपने हाथ से करना अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। लेकिन अगर कुर्बानी करना नहीं जानता या किसी और वजह से ख़ुद भी नहीं करना चाहता तो कम से कम ज़िबह के वक़्त खड़ा रहने का सवाब ज़रूर हासिल करे, बहुत से लोग इस वजह से मौजूद भी नहीं रहना चाहते, ये रूझान सही नहीं है।

कुर्बानी के वक़्त जो दुआंए मनकूल (रसूलुल्लाह स0अ0 से नक़ल की गयी हैं) हैं उनका पढ़ना अफ़ज़ल है लेकिन ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ ज़िबह के वक़्त "बिस्मिलिल्लाह अल्लाहु अकबर" कहना ज़रूरी है। कुर्बानी करते वक़्त नीचे दिये गये कामों का ख़्याल रखना चाहियेः

1– ज़िबह करने से पहले जानवरों को चारा खिला दिया जाये। भूखा–प्यासा रखना मकरूह है।

2– ज़िबह की जगह सहूलत से ले जाये। घसीट कर ले जाना मकरूह है।

3– क़िब्ला (काबे की ओर) रुख़ बायें करवट लिटांए। उससे जान आसानी से निकलती है।

4– छुरी तेज़ रखें। कुन्द छुरी से ज़िबह करना मकरूह है।

5– छुरी जानवर को लिटाने से पहले तेज़ कर ले और उससे छिपाकर तेज़ करें।

6– एक जानवर के सामने दूसरे जानवर को ज़िबह न करें।

7– ज़िबह के बाद जानवर के ठन्डे होने से पहले न सर अलग करे न खाल निकालें।

8– सुन्नत ये है कि जब जानवर ज़िबह करने के लिये क़िब्ला की तरफ़ लिटांए तो ये दुआ पढ़ेः

﴿إِنِّي وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ حَنِيفًا وَمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِينَ ☆ قُلْ إِنَّ صَلَاتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلَّهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ لَا شَرِيكَ لَهُ وَبِذَلِكَ أُمِرْتُ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُسْلِمِينَ﴾ اللّٰهم منك ولك"بسم الله الله اكبر

और ज़िबह करने के बाद ये दुआ पढ़ेः

"اَللّٰهُمَّ تَقَبَّلْهُ مِنِّيْ كَمَا تَقَبَّلْتَ مِنْ حَبِيْبِكَ مُحَمَّدٍ وَخَلِيْلِكَ إِبْرَاهِيْمَ عَلَيْهِمَا الصَّلَاةُ وَالسَّلَامُ"

कुर्बानी का गोश्त

अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) यह है कि कुर्बानी के गोश्त के तीन हिस्से कर लें। एक हिस्सा अज़ीज़ व अक़ारिब (रिश्तेदारों व मिलने वाला) के लिये, एक फ़क़ीरों के लिये और एक अपने लिये। लेकिन ये सिर्फ़ अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। स्वयं पूरा गोश्त भी इस्तेमाल कर सकता है और पूरा हदिया (भेंट) और सदक़े (दान) में भी दे सकता है। कुर्बानी का गोश्त ग़ैर मुस्लिमों को भी दिया जा सकता है। खाल अपने इस्तेमाल में ले ये ग़रीबों को दे दे। लेकिन कुर्बानी का गोश्त या खाल अगर बेचे तो उस रुपये को ग़रीबों पर सदक़ा करना ज़रूरी हो जाता है। वल्लाहु आलम बिस्सवाब

भैंस की कुर्बानी का हुक्म

शरीअत ने कुर्बानी के जानवर तय कर दिये हैं और ये जानवर तीन हैंः

1: ऊंट

2: गाय

3: बकरी

उपरोक्त सभी जानवर अपनी सारी ज़िन्स (क़िस्म अथवा प्रकार) सहित।

इसीलिये हदीसों में इन्हीं तीन जानवरों का ज़िक्र है।

1– हज़रत उक्बा बिन आमिर (रज़ि0) रिवायत करते हैं कि नबी करीम (स0अ0) ने उनको भेड़ बकरियाँ दीं ताकि कुर्बानी के लिये सहाबा किराम (रज़ि0) के बीच बाँट दें। (बुख़ारीः 5555)

2– हज़रत जाबिर (रज़ि0) रिवायत करते हैं कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमायाः "गाय सात लोगों की तरफ़ से और ऊंट सात लोगों की तरफ़ से काफ़ी है।"

(मुस्लिमः 2808)

अस्ल बात ये है कि कुरआन मजीद में कुर्बानी के जानवरों की तरफ़ इशारा करते हुए इन्हीं जानवरों का ज़िक्र

है। इसीलिये सूरह हज में है:

"और जितने अहले शरीअत (जिन समुदायों पर अल्लाह की शरीअत उतरी) गुज़रे हैं उनमें से हमने हर उम्मत के लिये इस ग़रज़ (उद्देश्य) से मुक़र्रर (तय) किया था वो इन (विशेष) चौपायों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उनको अता फ़रमाये थे।" (सूरह हज: 34)

फिर उन ख़ास जानवरों की दूसरी जगह व्याख्या करते हुए कहा:

"और ये मवेशी आठ नर व मादा (पैदा किये) यानि भेड़ व दुम्बा में दो क़िस्म (प्रकार) नर व मादा और बकरी में दो क़िस्म (प्रकार) नर व मादा (आगे है) और ऊँट में दो क़िस्म (प्रकार) और गाय (में दो क़िस्म)"

(सूरह अलइनआम: 133–135)

इसीलिये उलमा (धार्मिक विद्वान) सहमत हैं कि केवल उन्हीं जानवरों की क़ुर्बानी हो सकती है किसी और जानवर की नहीं हो सकती है। बदाए के लेखक फ़रमाते हैं: "रही उसकी जिन्स (क़िस्म) तो वो यह है कि जानवर तीन क़िस्मों बकरी, ऊँट या गाय में से हो और हर जिन्स में उसकी नऊ (प्रकार) और उसका नर और मादा और ख़स्सी या सांड सब दाख़िल हैं। इसलिये कि जिन्स (क़िस्म) का उन सब पर इतलाक़ (लागू) होता है।" (बदाए सनाए: 205/4)

और अल्लामा इब्ने रुश्द (रह0) फ़रमाते हैं:

"सब इस पर सहमत हैं कि वर्णित जानवरों के अलावा से क़ुर्बानी जायज़ नहीं है।"(बदायातुल मुजतहिद: 430/1)

फिर उलमा का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि ऊंट से मुराद उसकी हर क़िस्म है चाहे वो बख़्ती ऊँट हो या एराबी। बकरी में भी उसकी सभी क़िस्म भेड़, दुम्बा, शामिल हैं। गाय की भी सभी क़िस्में उसमें शामिल हैं। इसलिये कि हदीसों में उनके जिन्सी नाम लिये गये हैं और जिन्स हर क़िस्म पर लागू होती है।

फिर जमहूर (उलमा की एक बड़ी संख्यां जो आपस में सहमत हों) के निकट भैंस भी गाय की ही एक क़िस्म हैं लिहाज़ा उसकी क़ुर्बानी भी सही है।

साहबे बदाए (रह0) फ़रमाते हैं:

"बकरी ग़नम (भेड़) की एक क़िस्म है और भैंस गाय की एक क़िस्म है। इस दलील से कि इसको बाब–ए–ज़कात में ग़नम और गाय में मिला दिया जाता है।"

(बदाए सनाए: 205/4)

अल्लामा नववी (रह0) फ़रमाते हैं:

"अज़हिया में शरब जवाज़ यह है कि जानवर अनआम में से हो यानि ऊँट, गाय और बकरी इसमें ऊंट की सभी क़िस्में बख़ाती हैं और अराब और गाय की सभी क़िस्में यानि भैंस और ख़ालिस अरबी दरबानी और ग़नम की तमाम क़िस्में भेड़–बकरी और सबकी नर व मादा बराबर हैं, (आगे है) इसमें से किसी चीज़ में हमारे यहां कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है।" (अलमजमूअ: 222/8)

मालूम हुआ कि उलमा भी इस पर क़रीब–क़रीब एकमत हैं कि भैंस गाय ही का एक प्रकार है। किसी आयत या हदीस में यह नहीं आया है कि भैस गाय की जिन्स (क़िस्म) से है। कुरआन और हदीस में सिर्फ़ ये आया है कि गाय की जिन्स भी क़ुर्बानी के जानवरों में से है। फिर जमहूर इस पर मुत्तफ़िक़ हैं कि भैंस गाय की जिन्स से है। इसके लिये कुछ हवाले दिये जा रहे हैं।

1– अल्लामा इब्ने तैमिया (रह0) फ़रमाते हैं:

"भैंस गाय के मर्तबे (स्थान) में से है। इब्नुल मुन्ज़िर ने उससे संबंधित सहमति नक़ल किया है। (फ़तावा इब्ने तैमिया: 37/25)

2– अल्लामा इब्ने क़द्दामा (रह0) फ़रमाते हैं:

"भैस गायों के हुक्म में होंगी। इसमें हमें किसी के इख़्तिलाफ़ (मतभेद) की जानकारी नहीं।"

और इब्नुल मुन्ज़िर (रह0) फ़रमाते हैं: "अहले क़लम में से जिसकी बातें याद रखी जाती हैं उनमें से हर एक का इस पर इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है और भैंस गाय की क़िस्म में से हैं। जैसा कि बख़ाती ऊंट की किस्म में से है।

(अलमुग्नी : 470/2)

3– लुग़ात (शब्दकोष) में भैंस को गाय की जिन्स क़रार दिया गया है।

उलमा (धार्मिक विद्वान) के इत्तिफ़ाक (सहमति) और जानवरों के माहिरों के कथनों को देखकर जमहूर भैंस की क़ुर्बानी के जवाज़ (वैद्यता) के क़ायल (समर्थक) हैं। ये अलग बात है कि जिन इस्लामी देशों में सहूलत के साथ गाय की क़ुर्बानी हो सकती है वहां एहतियातन गाय ही की क़ुर्बानी होती है। भारत की विशेष स्थिति के कारण गाय की क़ुर्बानी मुश्किल काम है अतः भैंस की क़ुर्बानी से मुताल्लिक़ जमहूर के क़ौल से फ़ायदा उठाया जा रहा है। किसी को संतुष्टि न हो तो वह उसकी क़ुर्बानी न करे लेकिन जमहूर के कथन के बावजूद इस विषय पर बहस करना मैं समझता हूं कि अक़्लमन्दी की बात नहीं कही जा सकती है।

इस्लाम में पोपवाद नहीं

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

यूनान व रोम में धार्मिक व राजनीतिक आस्था साथ–साथ चलती थी। उनका अपना धर्म और अपनी विशेष जीवन प्रणाली थी। जनता की ख़ुशहाली एवं सुधार व उन्नति के लिये दोनों से समान सहयोग लिया जाता था लेकिन जब ईसाई धर्म ने रोम में प्रवेश किया तो उसने इस एकता व आपसी गठजोड़ को छिन्न–भिन्न कर दिया। उसके टूटते ही राजनीतिक विचारधारा में एक ऐसा तत्व सम्मिलित हो गया जिसने राजनीति को बिल्कुल नया रंग दे दिया। धार्मिक जीवन व सामाजिक जीवन को बांट दिया, "क़ैसर और ख़ुदा के अधिकार" अलग–अलग हो गये। जिस तरह राज्य व शासन शांति की स्थापना एवं ख़ुशहाली के बदले आज्ञापालन व अनुसरण के दावेदार थे उसी प्रकार क्लेसा (चर्च) भी आत्मिक सुधार व उन्नति का जिम्मेदार बनकर अपना अधिकार मांगने लगा।

क्लेसा के संचालक पोप (च्वचम) कहलाता था जो ख़ुदा और बन्दों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता था। वह हर तरह के अच्छे–बुरे का मालिक होता था। उसका आदेश शाही आदेश से भी ऊपर था। उसे अपने मर्ज़ी से धर्म निमार्ण एवं आदेश देने का पूर्ण अधिकार था। वही अज्र व सवाब और गुनाह व अज़ाब (दण्ड) की सीमाएं तय करता। जायज़ व नाजायज़, हलाल व हराम की हदबन्दियां (सीमानिर्धारण) उसी के इशारे की मोहताज थीं। गुनाहगारों और विशेषतयः मालदार गुनाहगारों को माफ़ीनामा उसी के दरबार से हासिल होता था। किसी के अन्दर उसके हुक्म को न मानने की हिम्मत नहीं थी।

पोप की ओर से कनफ़ेशन (गुनाह स्वीकारने) की भी व्यवस्था थी। लोग हफ़्ता–दस दिन में चर्च में उपस्थित होकर अपने गुनाहों को स्वीकारते और क्षमा याचना करते। पोप का प्रतिनिधी पादिरी उनका निर्णय करता। आम गुनाहगारों को सज़ा मिलती और ख़ास लोगों को माफ़ी का परवाना मिलता। उनसे रक़में वसूल की जाती और स्त्रियों का शोषण किया जाता।

पोप का आदेश मानना हर व्यक्ति पर अनिवार्य था। किसी के अन्दर आदेश की अवहेलना का साहस न था। क्योंकि यह एक ऐसा संगीन जुर्म था जिसकी सज़ा बड़ी दर्दनाक मौत थी। पोप के कारिन्दे जनता पर हर समय निगाह रखते और किसी भी स्तर पर पोप के विरोध को ताक़त से रौंद देते थे। इसी उद्देश्य के लिये भविष्य में एक विभाग "पड़ताल विभाग" (Inquistition) के विषय से सरगर्म था। जिसकी पकड़ में आने के बाद पीड़ित व्यक्ति सज़ा के रस्मी ऐलान के पहले ही जांच के नाम पर अत्यधिक कष्टदायी पीड़ा व तकलीफ़ का शिकार होता था। उन्हें एक साथ तंग, अंधेरी, बदबूदार जेलों में ठूस दिया जाता जहां उन्हें बहुत तकलीफ़ होती।

ऐतिहासिक सबूतों से साबित है कि पोप की अवज्ञा के जुर्म में लगभग पांच मिलियन लोगों को सूली पर चढ़ाया गया। 1481 से 1499 ई0 तक यानि 18 साल के समय में जांच विभाग के आदेश पर 1020 लोगों को ज़िन्दा जला दिया गया। 6860 लोगों के दो टुकड़े कर दिये गये। 97023 को शिकंजों में इतना कसा गया कि उनकी रूहों ने उनके शरीर का साथ छोड़ दिया।

आज पोपवाद (Papacy) का रसूख जबकि कम हो चुका है लेकिन धार्मिक व व्यवहारिक शोषण किसी न किसी रूप में बाक़ी है और यही विचार किसी हद तक हिन्दु समाज में भी कार्यरत है। मन्दिरों के पुजारियों व मठों के स्वामियों को अर्द्ध भगवान के प्रतिनिधी का दर्जा मिला हुआ होता है या कम से कम उन्हें भगवान का प्रतिनिधी माना जाता है जिनकी मर्ज़ी के बिना न मुसीबतें टल सकती हैं न औलाद व दुनियावी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है और फिर उसकी आड़ में जो अव्यवहारिक घटनाएं घट रही हैं वह प्रतिदिन का एक दिलचस्प विषय बन चुका है।

बहुत से लोग जिनमें सीधे–साधे मुसलमान भी शामिल हैं वे पैपैसी की इस विचारधारा को इस्लाम पर भी लागू करने की कोशिश करते हैं और समझते हैं कि मुफ़्ती या आलिम को "शरीअत निर्माण" के अधिकार प्राप्त हैं। वे जायज़ को नाजायज़, हराम को हलाल कर सकते हैं। वे फ़तवों या इस्लामी आदेशों को आवश्यकतानुसार बदल सकते हैं। तो यह केवल जिहालत व जिहालत पर आधारित विचारधारा और इस्लाम से अज्ञानता की खुली दलील है। क्योंकि वास्तव में फ़तवा इस्लामी आदेश है और उसमें मर्ज़ी को बदलने का अधिकार दुनिया के बड़े से बड़े मुफ़्ती या आलिम को नहीं।

इस्लाम में पैपैसी की छायामात्र तक नहीं है। इस्लाम में न कोई विशेष पद है और न कोई ख़ुदा व बन्दे के बीच मध्यस्थ है। इस्लाम में किसी के सामने गुनाह क़ुबूल करने की ज़रूरत नहीं। इसी तरह औलाद को पाने के लिये, कारोबार की उन्नति की उन्नति के लिये, परेशानियों से छुटकारा पाने के लिये किसी साधू संत की तरह किसी आलिम या मुफ़्ती या पीर–फ़क़ीर की चौखट पर जाने की आवश्यकता नहीं बल्कि यह सख़्ती से मना और संगीन जुर्म है। क्योंकि इस्लाम कहता है कि अल्लाह तआला अपने बंदो से बेहद क़रीब है और बन्दों की हर आवश्यकता, हर दुआ को वह स्वयं सुनता है और नवाज़ता है।

तौबा व इस्तिग़फ़ार

अल्लाह की याद, कुरआन करीम की तिलावत और दुआ के साथ–साथ यह भी ज़रूरी है कि तौबा व इस्तिग़फ़ार के अल्फ़ाज़ (शब्द) भी ज़बान पर आते रहें। कौन ऐसा मुसलमान है जो किसी न किसी गुनाह का करने वाला न हो। जानबूझ कर गुनाह करना और जुर्रत का पैदा होना इतनी बड़ी हिम्मत है कि ईमान के चले जाने का डर है। लेकिन अगर कोई इसके बाद भी सच्चे दिल से तौबा करता है और अल्लाह से माफ़ी मांगता है तो जानबूझ कर किया गया गुनाह भी माफ़ कर दिया जाता है। तौबा का दारोमदार तो ज़्यादातर दिल से है और ज़बान तो उसका ज़रिया है। अगर किसी ने ख़ुदा की नाफ़रमानी की है तो उससे तौबा करने की तीन शर्त हैं:

१– गुनाह करने पर शर्मिन्दगी

२– उस गुनाह को छोड़ देना

३– आगे उसको न करने का पक्का इरादा करना

और यदि किसी का हक़ मारा है या उसको सताया है तो इन तीन शर्तों के अलावा चौथी शर्त यह है कि उससे माफ़ी मांगे और उससे माफ़ी चाहे यदि वह इस दुनिया में नही है तो उसके लिये मग़फ़िरत की दुआ करे अगर कर्ज़ है तो उसके वारिसों को उसका कर्ज़ अदा कर दे।

इस यक़ीन व इरादे के साथ ज़बान से भी तौबा करना चाहिये। तौबा व इस्तिग़फ़ार के लिये गुनाह का होना ज़रूरी नहीं है। हर हालत में तौबा व इस्तिग़फ़ार करना मोमिन की शान है। रसूलुल्लाह स०अ० जो मासूम थे बराबर तौबा व इस्तिग़फ़ार करते रहते थे। हदीस शरीफ़ में है:

"लोगो! अल्लाह के दरबार में तौबा करो। मैं ख़ुद दिन में सौ–सौ बार उसके दरबार मैं तौबा करता हूं।" (मुस्लिम)

दूसरी जगह आया है कि हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ि० कहती हैं कि रसूलुल्लाह स०अ० कहते थे कि:

"ऐ अल्लाह मुझे उन बन्दों में से कर दे जो नेकी करें तो ख़ुश हों और जब उनसे कोई ग़लती हो जाये तो तेरे दरबार में इस्तिग़फ़ार करें।" (इब्ने माजा)

गुनाह का हो जाना स्वाभाविक है। ग़लतियां तो हर हाल में हो जाती हैं। लेकिन वह ग़लती करने वाला मुबारक है और अल्लाह के रसूल स०अ० की निगाह में पसंदीदा है जो अपनी ग़लती पर शर्मिन्दा हो और दिल से उसे छोड़ने का इरादा करे।

हज़रत अनस रज़ि० से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स०अ० ने फ़रमाया: "हर आदमी ग़लती करने वाला है और ग़लती करने वालों में वे बहुत अच्छे हैं जो तौबा करें और अल्लाह की ओर लौटें।" (तिरमिज़ी)

मौलाना मुहम्मद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP - 10

ISSUE: 09 SEPTEMBER 2016 VOLUME: 08

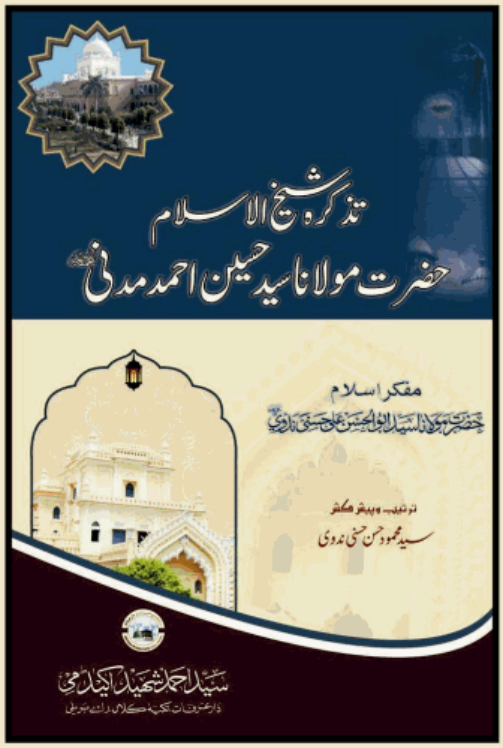

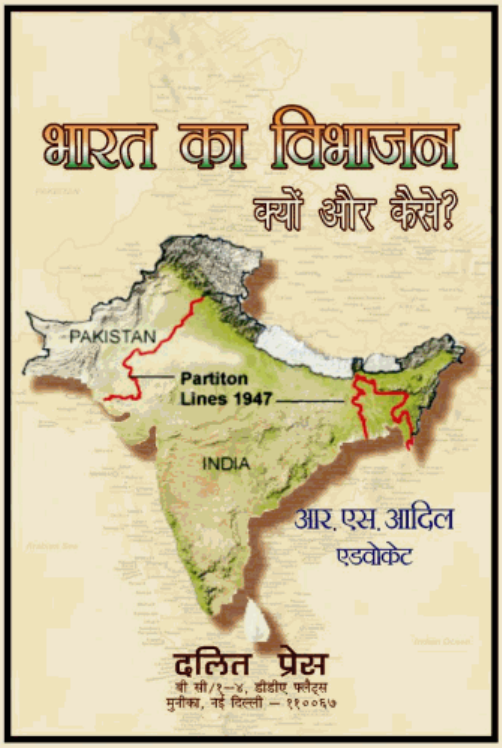

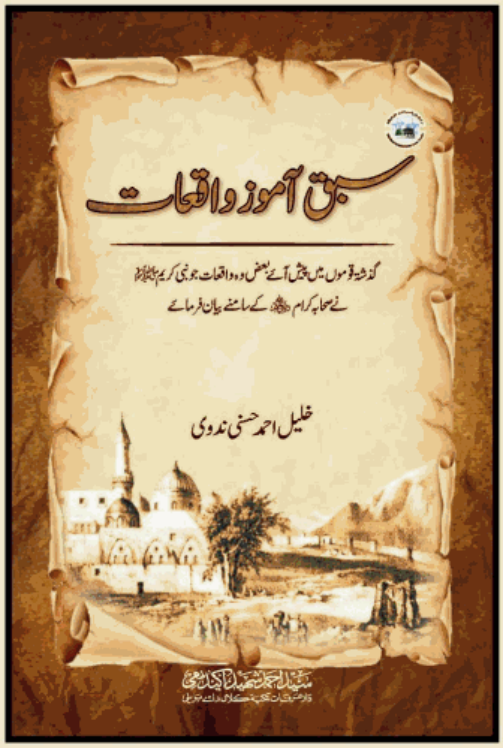

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9792646858
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.